जेएनयू परिसर

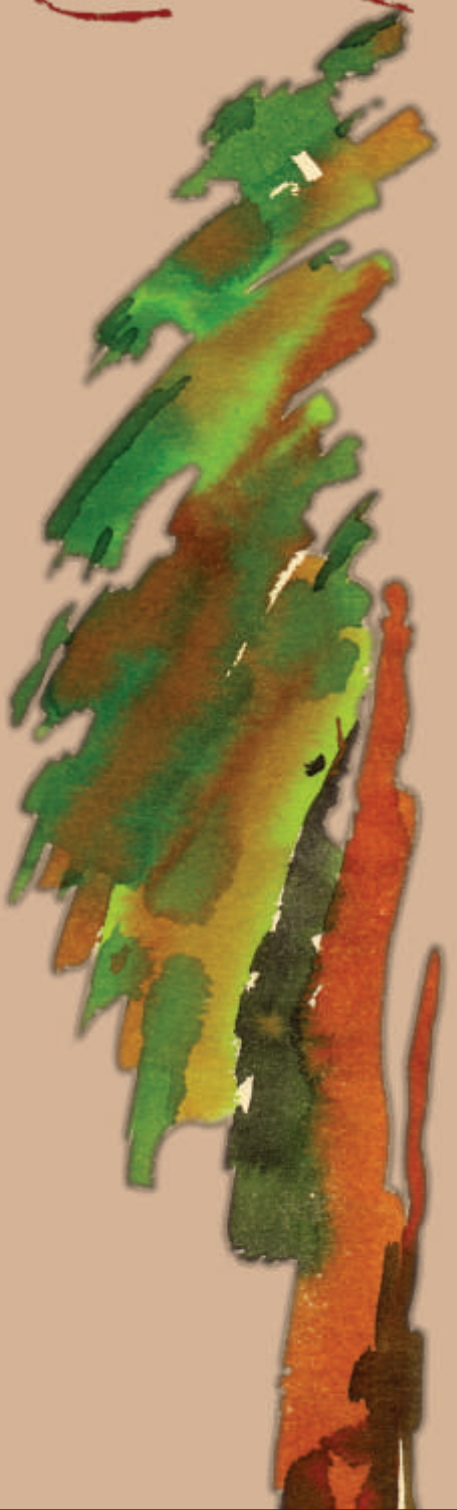

वर्ष–2 अंक–3 जनवरी–जून, 2014

"हमारे भव्य जंगलात उन वन्य जीवों एवं खूबसूरत परिंदों को उद्धृत करते हैं जो हमारे जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं। यदि ये भव्य वन्य जीवन हमें खेलने व देखने को ना मिले तो हमारा जीवन नीरस व रंगहीन हो जाएगा। अतः हमें बचे हुए वन्यजीवों एवं जंगलों का संरक्षण करना चाहिए।"

— पं. जवाहरलाल नेहरू

ब्रूक्स गैको

गुहेरा

बामनी

गिरगिट

परिसर के सरीसृप

(भाग–1 लिज़र्ड्स)

विख्यात प्रकृतिविद् चार्ल्स डार्विन ने अपनी पुस्तक 'द ऑरिज़िन ऑफ स्पीशिज' में जीवन के क्रमिक विकास में सरीसृपों की विस्तार से व्याख्या की है। डाइनासौर को आज के सरीसृपों का प्रमुख पूर्वज़ माना जाता है। जेएनयू परिसर की प्राकृतिक परिस्थितिकी इन रेंगने वाले जीवों को पर्याप्त भोजन, अनुकूल प्रवास व शरण प्रदान करती है।

परिसर का पठारी भाग इन शीत रक्तिय छिपकली (लिज़र्ड्स) समुदाय के जीवों को धूप सेंकने के लिए कहीं चटट्ानें तो कहीं छुपने के लिए लैंटाना, बेर व ढाव जैसे पौधों की झाडियों का संरक्षण प्रदान करता है। इन्हीं झाडियों में विभिन्न प्रकार के कीट पतंगें व अन्य जीव जन्तु भी शरण लेते है जो कि इन लिज़र्ड्स का मुख्य भोजन होते हैं। सामान्यतः इन लिज़र्ड्स की त्वचा शल्क युक्त होती है, जिनमें कई प्रकार के जैव रसायन होते हैं जो इन्हें आवास के अनुकूल रंग बदलने जैसी क्षमता प्रदान करते हैं जिसे कैमोफ्लैज़ कहते हैं, गिरगिट इसका मुख्य उदाहरण है।

परिसर में आठ प्रकार की लिज़र्डस पाई जाती हैं, जिनमे घरों में पायी जाने वाली छिपकली, गिरगिट, बामनी, फैन थ्रोरेड लिजर्ड, ब्रौंज ग्रास स्किंक, ब्रूक्स गैको, कामन स्किंक व गुहेरा प्रमुख हैं। गुहेरा परिसर में पाई जाने वाली सबसे बड़ी लिज़र्ड है, जिसकी लम्बाई 4–5 फुट तक भी पहुँच सकती है। इस विषहीन एवं दुर्लभ लिज़र्ड को अक्सर मानवीय क्रोध व अज्ञानता का शिकार बनना पड़ता है। मनुष्य समाज की एक फिदरत होती है कि जिसे वह नहीं जानता उससे वह डरता है, और जिससे डरता है उसे वह नष्ट कर देता है या नष्ट करने का प्रयास करता है। मजे की बात यह है कि भारत में पाई जाने वाली किसी भी प्रजाति की लिज़र्ड में विष नहीं पाया जाता।

परिसर की परिस्थितिकी में इन लिज़र्डस का बड़ा योगदान है, क्योंकि ये फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीट–पतंगों व अन्य जीव जन्तुओं को खाते हैं, वह स्वंय भी बड़े शिकारी पक्षियों व जानवरों का भोजन बनते हैं।

अत्यधिक सर्दियों में ये प्राणी शीत निष्क्रियता में चले जाते हैं व मानसून के आगमन पर व गर्मियों में वापस बाहर आ जाते हैं। इनमें अंग पुनरुत्पादन की अद्भुत क्षमता होती है जिस पर विश्व भर के वैज्ञानिक शोधरत हैं ताकि इनकी इस अद्भुत क्षमता को मानव अंग पुनरुत्पादन में कृत्रिम रूप से विकसित किया जा सके जो कि भविष्य में एक क्रान्तिकारी शोध हो सकती है।

जेएनयू ने इन सरीसृपों के प्रति परिसर वासियों व सुरक्षा कर्मियों में जागरुकता फैलाने के लिए एक अनूठी पहल की है, जिसके तहत लोगों को इनके बारे में जानकारी दी जाती है जिसमें एक एनजीओ व जेएनयू का बौद्धिक वर्ग, जो इनके बारे में जानकारी रखता है, भी शामिल हैं। लेखक स्वयं भी इस वर्ग का एक भाग है।

— डॉ. सूर्य प्रकाश

जेएनयू परिसर

वर्ष–2 अंक–3

जनवरी–जून 2014

l iknd&eMy

v/;{k

प्रो. गोबिन्द प्रसाद

lnL;

प्रो. सौमित्र मुखर्जी

डॉ. संदीप चटर्जी

डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे

डॉ. डी.के. लोबियाल

डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर

श्रीमती पूनम एस. कुदेसिया

l iknu lg;kx

भावना बेदी

fo'k"k lg;kx

धीरेन्द्र कुमार

i c/k l iknu lg;kx

के.एम. शर्मा

डॉ. सूर्य प्रकाश

d yhxkQh rFkk vkoj.k fp=

प्रो. गोबिन्द प्रसाद

QkVk

वकील अहमद

Vkbi lfVx

शिव प्रताप यादव

l id

संपादक

जेएनयू परिसर

हिंदी एकक

प्रशासनिक भवन

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

दूरभाष : + 91 11 26704023, 26704283

ई–मेल : jnuparisar@mail.jnu.ac.in

hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन / संचालन : अवैतनिक

l ikndh;@2

ckrphr@3

राकेश कुमार वर्मा

ikB;Øe l okn@10

विवेक कुमार

foKku ifjn';@14

सौमित्र मुखर्जी

अशोक कुमार रस्तोगी

y [kd dh nfu;k@20

सूज़न विश्वनाथन

संदीप चटर्जी

;k=k oÙkkr@24

असग़र वजाहत

0;k[;ku@27

नामवर सिंह

dk0; l tu@30

वरयाम सिंह

y [k@32

बृजेश कुमार

fp ru@34

सत्येन्द्र कुमार, गौतम कुमार झा

vuokn@38

चाँदनी कुमारी, प्रसेनजीत कुमार

fgnh l lkj@42

सत्येन्द्र कुमार

dfork,@45

दीपक शर्मा, नवीन यादव, आनंद कुमार शुक्ल, अनुश्री प्रेरणा, सुभाष कुमार, बृजेश कुमार, मनीषा, कुसुम लता शर्मा, ओमप्रकाश सेन

;knk d xfy;kj l@49

राम चन्द्र

xxk <kck@52

आनंद कुमार शुक्ल

leh{kk@53

प्रियदर्शन, स्नेह सुधा

xfrfof/k;k@57

भावना बेदी, कौशिका, सुनीता, दीपशिखा सिंह

t ,u; ifjlj में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं।

संपादकीय

t\,u;\ ifjlj के अभी तक दो अंक निकल चुके हैं। पाठकों की प्रतिक्रिया हमारे लिए स्वागत योग्य और महत्वपूर्ण है। पाठकों ने जिस तरह से हमारी गृह पत्रिका जेएनयू परिसर का स्वागत किया है हमारे लिए वह हर्ष का विषय है। हमारी इस गृह पत्रिका का मूल स्वभाव न तो पूरी तरह से साहित्यिक है और न ही ठेठ अकादमिक। हमारा प्रयास रहता है कि हम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र एवं अध्यापक वर्ग, अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग सभी की गतिविधियों एवं उनकी भागीदारी से जेएनयू परिसर को गतिशील बनाए रखें। इस गतिशीलता को बनाए रखने के लिए हमारा प्रयास रहता है कि हम तद्नुरूप सामग्री प्रकाशित करते रहें।

जेएनयू परिसर का यह तीसरा अंक आपके हाथों में देते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। पिछले दिनों कुछ विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम को लेकर घमासान चलता रहा है। समय–समय पर पाठ्यक्रम संबंधी संवाद करना किसी भी विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत अंक में पाठ्यक्रम संवाद स्तंभ के अन्तर्गत प्रो. विवेक कुमार से समाजशास्त्र से जुड़े पाठ्यक्रमों पर विशेष चर्चा हुई। इस बातचीत में हमें सुनीता का सक्रिय सहयोग मिला। बातचीत स्तंभ के अन्तर्गत इस बार भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा सेवा से आए श्री राकेश कुमार वर्मा से जेएनयू संबंधी विविध मुद्दों को लेकर डॉ. गोबिन्द प्रसाद की लम्बी बातचीत हुई। श्री राकेश कुमार वर्मा जेएनयू में वित्त अधिकारी हैं।

हमारा प्रयास है कि विज्ञान संबंधी अधिक से अधिक जानकारी हम अपने पाठकों को हिंदी भाषा के माध्यम से उपलब्ध कराएं। इस प्रतिज्ञा को ध्यान में रखते हुए इस बार विज्ञान परिदृश्य के अन्तर्गत दो विशिष्ट आलेख दिए जा रहे हैं। पहला लेख प्रो. सौमित्र मुखर्जी द्वारा ब्रह्माण्डीय किरणों का अध्ययन और पर्यावरण पर उसके होने वाले प्रभाव से संबंधित है, जबकि दूसरा लेख प्रो. अशोक कुमार रस्तोगी का है जिन्होंने तापमान एवं पदार्थ विज्ञान में निम्न ताप के महत्व को रेखांकित किया है।

काव्य–सृजन के अन्तर्गत हम किसी एक कवि की कविताओं का चयन करते हैं। प्रस्तुत अंक में प्रो. वरयाम सिंह (रूसी अध्ययन केन्द्र, जेएनयू से हाल ही में सेवानिवृत्त) की तीन कविताएं दी जा रही हैं। अनुवादक के रूप में वे ख्यातिलब्ध हैं लेकिन कम ही लोग जानते हैं कि वे एक बेहतर कवि भी हैं। इसी क्रम में प्रो. दीपक शर्मा, श्री नवीन यादव, श्री आनन्द कुमार शुक्ल, अनुश्री प्रेरणा, सुभाष कुमार, बृजेश कुमार, मनीषा, कुसुम लता शर्मा, ओमप्रकाश सैन की कविताएं भी पाठकों को पढ़ने के लिए मिलेंगी।

अनुवाद के अन्तर्गत इस बार दो जापानी कवियों की कविताएं दी जा रही हैं। मीचीओ मादो की 'साकुरा की पंखुड़ी' तथा नाओको कुदो की 'मिलने के लिए' शीर्षक कविताएं चांदनी कुमारी द्वारा अनुदित हैं। लेखक की दुनिया के अन्तर्गत अभी तक कविताएं अथवा साहित्यिक संवाद के रूप में सामग्री जाती रही है। लेकिन पहली बार लेखक की दुनिया के अन्तर्गत सूज़न विश्वनाथन की कहानी 'पल भर में' दी जा रही है जो व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर करती है। साथ ही डॉ. संदीप चटर्जी द्वारा लिखित सत्य घटना पर आधारित 'जब दीप जले आना, जब शाम ढले आना...' कहानी प्रस्तुत है जो अपनी भाषा और विवरण में पाठकों को आकर्षित करेगी।

यात्रा–वृत्तांत के अन्तर्गत इस बार चर्चित कथाकार और नाटककार असग़र वजाहत की पुस्तक 'चलते तो अच्छा था' से आधी दुनिया शीर्षक अध्याय का चयन किया गया है जिसमें ईरान की राजधानी तेहरान से लगभग साढ़े तीन सौ मील दूर इस्फहान का ऐतिहासिक परिदृश्य के साथ स्त्री जगत को रोचक अन्दाज़ में पेश किया गया है। इस संस्मरण को प्रकाशित करने की उन्होंने हमें अनुमति दी जिसके हम आभारी हैं। इसके अतिरिक्त बृजेश कुमार का 'मीडिया और भाषा का अंतर्संबंध', डॉ. सत्येन्द्र कुमार का 'बीसवीं सदी में महिला सशक्तिकरण' तथा डॉ. गौतम कुमार झा का 'मुस्लिम बहुल इण्डोनेशिया में विश्व संस्कृति मंच' आदि लेख चिंतन स्तम्भ के अन्तर्गत दिए जा रहे हैं। एक लेख प्रसेनजित कुमार का अनुवाद संबंधी समस्याओं पर है तो एक अन्य लेख डॉ. सत्येन्द्र कुमार का 'राजभाषा पर समालोचनात्मक दृष्टिकोण' हिंदी संसार स्तंभ के अन्तर्गत दिया जा रहा है। व्याख्यान स्तंभ के अन्तर्गत इस बार प्रेमचंद स्मृति व्याख्यान में डॉ. नामवर सिंह ने अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए।

यादों के गलियारे से स्तंभ में इस बार चर्चित कवि कथाकार स्वर्गीय ओमप्रकाश वाल्मीकि पर बहुत ही आत्मीय संस्मरण डॉ. राम चन्द्र ने जेएनयू परिसर के लिए लिखा है जिसमें वाल्मीकि जी का जेएनयू से कितना घनिष्ठ साहित्यिक रिश्ता रहा है बखूबी उजागर होता है। गंगा ढाबा जेएनयू बौद्धिक समाज के लिए अनौपचारिक बहस–मुबाहिसों का पुराना ठीहा रहा है। गंगा ढाबा के अन्तर्गत आनन्द कुमार शुक्ल ने इस बार पत्थरों पर सुलगते लौकिक साहित्य को विशिष्ट शैली में पकड़ने का प्रयास किया है। समीक्षा स्तंभ के अन्तर्गत स्नेह सुधा द्वारा लिखित जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली और प्रियदर्शन द्वारा लिखित केदारनाथ सिंह के काव्य–संग्रह 'सृष्टि पर पहरा' की समीक्षा दी जा रही है। गतिविधियाँ स्तंभ के अन्तर्गत डॉ. गोबिन्द प्रसाद की पुस्तक, 'केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक' तथा 'कविता का पार्श्व' पर जेएनयू में हुई संगोष्ठी की रिपोर्ट प्रस्तुत है। साथ ही जापान के सम्राट और साम्राज्ञी के जेएनयू आगमन पर कौशिका द्वारा रिपोर्ट दी जा रही है, सुनीता द्वारा 'दूसरा गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान' की प्रस्तुति और प्रेमचंद के अध्ययन की नयी दिशाएं विषय पर हुए एक दिवसीय संगोष्ठी रिपोर्ट दीप शिखा सिंह द्वारा प्रस्तुत है।

हम अपनी पत्रिका **t\,u;\ ifjlj** में नर्सरी स्कूल जेएनयू के नन्हें–मुन्नें बच्चों द्वारा बनाए गए चित्र एवं रेखांकनों का उपयोग सगर्व करते हैं। इस रचनात्मक सहयोग के लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

– प्रो. गोबिन्द प्रसाद

ckrphr

t,u;w dk ,d ekMy dh :i esa tkuk tkrk gS

श्री राकेश कुमार वर्मा*

(श्री राकेश कुमार वर्मा से प्रो. गोबिन्द प्रसाद की बातचीत)

vkidh çkjfHkd f'k{kk dgk¡ ls gqbZ A

वैद्यनाथ देवघर जो अब झारखण्ड में है। उस समय अविभाजित बिहार में था। मैंने वहां से 1972 में मैट्रिकुलेशन किया। फिर टीएनबी कॉलेज भागलपुर से इंटर साइंस 1974 में किया। उसके बाद मैं दिल्ली चला आया और फिर दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास आनर्स से 1975–78 बैच में ग्रेजुएशन किया।

vki igys lkbal dk fo|kFkhZ Fks fQj ckn esa bfrgkl dk fo|kFkhZ dSls cu x;s A

शुरू में साइंस यह सोचकर लिया था कि मैं मेडिकल डॉक्टर अर्थात् सर्जन बनूँगा लेकिन इंटर साइंस में जो पढ़ाई शुरु हुई उसमें पहले ही दिन के प्रैक्टिकल में मुझे दिक्कत आ गई। मुझसे कहा गया कि मेंढ़क को क्लोरोफोम सुंघा कर उसे चीरो। तो बस मैं वहीं फेल हो गया। मेरा रैंक विश्वविद्यालय में बहुत अच्छा था लेकिन प्रैक्टिकल में जो हमारी लेडी प्रोफेसर थीं, उन्होंने कहा कि तुम से यह नहीं होगा। तुम अगर मेढ़क को बेहोश करके नहीं चीर सकते हो तो डॉक्टर और सर्जन क्या बनोगे? तुम अपने लिए कोई दूसरा विषय चुन लो।

esa<d dk phjus esa dgha vkidk ikfjokfjd laLdkj rks chp esa ugha vk x;k A

पारिवारिक संस्कार के अलावा कभी–कभी कोई घटना दिमाग से उतरती नहीं है। कहीं यह मेंढ़क पूरी तरह से बेहोश नहीं हुआ होगा। जब हम मेंढ़क को चीर रहे थे तो उस समय मेरे दिमाग में था कि यह छटपटा रहा है। इसकी अमिट छाप मेरे मन पर पड़ी कि इसको कितनी तकलीफ हो रही होगी। यह कितना छटपटा रहा है। यह सही है कि सीखना हमारे लिए ज़रूरी है ताकि हम मानवता की सेवा कर सकें लेकिन सीखने का यह तरीका मुझे रास नहीं आया। किसी जीव की छटपटाहट को देखना मेरे वश में नहीं था। उसके बाद मैं दिल्ली विश्वविद्यालय आ गया। मैंने यहाँ से ग्रेजुएशन 1978 और एम. ए. 1980 में इतिहास से किया।

bfrgkl esa vkidk Lis'kykbt'ku D;k Fkk A

इतिहास में मेरा स्पेशलाइजेशन मॉर्डन इंडिया था। मुझे इतिहास पढ़ने में शुरू से ही दिलचस्पी थी। विशेषकर मुझे मॉर्डन इंडिया (उसमें भी विशेषकर फ्रीडम मूवमेंट, भगत सिंह और दूसरे किस्म के आंदोलन) में ज़्यादा दिलचस्पी थी। मैं दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.फिल. डॉ. सुहास चक्रवर्ती के निर्देशन में कर रहा था। तीन साल दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न कॉलेजों में पढ़ाया। मेरी सबसे पहली नौकरी श्यामलाल कॉलेज, शाहदरा में लगी थी। उसके बाद मैंने यूपीएससी सिविल सेवा की परीक्षा 1983 में उत्तीर्ण की। जिसमें पहली बार में ही मेरा चयन इंडियन ऑडिट ऐंड एकाउंट्स सर्विस में हो गया और मैंने ज्वॉइन कर लिया।

vkius rhu lky fnYyh fo'ofo|ky; esa v/;kiu fd;kA ;g rhu lky vkidk fy, dSls jgs A blds nkSjku vkidk vuqHko D;k Fkk A

मेरा अनुभव बहुत अच्छा रहा। अध्यापन में मेरी काफी दिलचस्पी थी और मन भी लग रहा था। इसके साथ ही मैं रिसर्च भी कर रहा था। लेकिन कुछ परिस्थितियाँ दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में ऐसी बन गई कि विचारधाराओं का सामंजस्य नहीं बन पाया। कुछ व्यक्ति ज़्यादा ही महत्त्वपूर्ण हो गए। यदि आप किसी विचारधारा से कन्विंस न हों या आप उनके साथ सहमत न हो और इसके लिए आपको भेदभाव झेलना पड़े तो तकलीफ होती है। हमारे सुपरवाइज़र डॉ सुहास चक्रवर्ती थे। उनको भी मार्ज़नलाइज कर दिया। वो टॉपर थे। हमें हिस्ट्री पढ़ाने के लिए आर.एस. शर्मा, वी.पी. दत्त, डी.एन. झा, सुहास चक्रवर्ती, सुमित सरकार, पार्थसारथी गुप्ता, इरफान हबीब आदि आते थे। हमें जेएनयू से लेक्चर देने के लिए एन्सियन्ट हिस्ट्री में रोमिला थापर, मॉर्डन हिस्ट्री में विपिन चन्द्रा आते थे। पॉलिटिकल थॉट प्रो. रणधीर सिंह पढ़ाते थे। उनकी कक्षा में पिनड्राप साइलेंस... मतलब कि वाकई पिनड्राप साइलेंस होता था। मेरे हिसाब से मेरी जिंदगी में सबसे अच्छे अध्यापक प्रो. रणधीर सिंह रहे हैं। मुझे अभी तक याद है कि पॉलिटिकल थॉट में मुझे सिक्स बाई सिक्स आया था। बी.ए., मैट्रिकुलेशन, इंटर साइंस, बी.ए. ऑनर्स, एम.ए. मेरा मतलब कि मुझे हमेशा प्रथम श्रेणी में विजय मिली। उसके बाद मैंने मॉस्टर्स ऑफ डिवलपमेंट स्टडीज में इंग्लैड की यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंग्लिया से मॉस्टर्स की डिग्री ली। मेरा वहां बहुत अच्छा अनुभव रहा। विदेशों में दूसरे तरह की शिक्षा–दीक्षा होती है। यह इंग्लैंड की अच्छी यूनिवर्सिटीज़ में मानी जाती है। मुझे

*साक्षात्कारदाता भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा सेवा से हैं और जेएनयू में वित्त अधिकारी हैं।

वहां काफी कुछ सीखने का मौका मिला।

fQj vki vkfMV foHkkx e vk, rk ;g ,dne fHkUu iÑfr dk dk;l gk x;kA ,d rjQ vkiu v/;kiu fd;k--- vki lkbl d fo|kFkh vkj fQj bfrgkl d fo|kFkh jgA bld ckn egkys[kkdkj cuA ejk dguk g fd bu rhuk e vkidk lkeatL; cBku e ;k viu vkidk mld vuqdy dj yu e fdl idkj dh fnDdrk dk lkeuk djuk iMk

जहाँ तक सिविल सर्विस का सवाल है। उसका ढाँचा ऐसा जबरदस्त है और वे प्रशिक्षण इतना अच्छा देते हैं ... जैसे कि मुझे ऑडिट के बारे में पहले कोई भी जानकारी नहीं थी। जब मैंने सर्विस ज्वाइन की। मुझे तुरन्त लालबहादुर शास्त्री नेशनल अकादमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी भेज दिया गया। वहां से मैंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। उसके बाद नेशनल अकादमी ऑफ ऑडिट ऐंड एकाउंट्स, शिमला चला गया। उसके बाद मैंने सर्विस में रहते हुए भी शिक्षा जारी रखी। जैसे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैंनेजमेंट, बंगलौर जो कि बहुत ही प्रसिद्ध संस्था है, से मैंनेजमेंट का कोर्स किया, ये ट्रेनिंग बहुत अच्छी देते हैं। हमने पॉलिटिकल साइंस और इतिहास पढ़ा था। इसलिए हमें ज़्यादा दिक्कत नहीं हुई। इसके अलावा मेरा प्रशिक्षण रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई एवं नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनेंशियल मैनेजमेंट में भी हुआ है। इन सबसे मुझे काफी कुछ सीखने का अवसर मिला।

;gk vkiu l igy vkiu fofHkUu {k=k vkj fo"k;k dk v/;;u vkj v/;kiu fd;kA orleku in ij jgr g, D;k ; fofHkUu vuHko vkid dke e lgk;d jg gl

हाँ, नॉलेज काम आती है। सरकार, ऑडिट, आम आदमी और नागरिक का जो विज़न है कि जो भी पैसा विधायिका कार्यपालिका को देती है उस पैसे को उसी कार्य में खर्च किया जाए। मतलब कि उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही खर्च होना चाहिए, जिसके लिए दिया गया है। अगर सरकार ब्लाइंडनेस कंट्रोल के लिए पैसा देती है तो पैसा ब्लाइंडनेस कंट्रोल पर ही खर्च होना चाहिए और उस योजना का लाभ भी जनता को पहुँचना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है तो ऑडिट का काम उसको प्वाइंट आउट करता है।

,lk rk vkn'k fLFkfr e gh lEHko gA D;k Bhd ,lk lEHko gk ikrk gl

यदि ऐसा पूर्णतया सम्भव नहीं हो पाता है तो क्यों नहीं हो पाया, यही देखना आडिट का कार्य है। मैंने जब 1983 में सर्विस ज़्वाइन की थी तब मैं राँची में उप महालेखाकार के पद पर था। उस समय सीएजी की बोफोर्स रिपोर्ट पर राजीव गाँधी की सरकार घिर गयी थी। उसके बाद भी कई स्केम्स हुए। हाल ही में 2जी, 3जी और कोलगेट स्केम आदि। सीएजी एक संवैधानिक संस्था है, जिसका कर्तव्य देश को और सरकार को पार्लियामेंट के माध्यम से यह बताना है कि पैसे का सदुपयोग हो रहा है या दुरुपयोग। मेरा मानना है कि ये दो चीजें – ऑडिट और विजिलेंस बहुत जरूरी हैं। इन्हें स्ट्रेंग्थन करना ज़रूरी है। यहाँ तो मीडिया स्वतंत्र है। मीडिया के लिए यहाँ कुछ कहना नहीं है। वह अच्छा काम कर रहा है लेकिन ऑडिट और विजिलेंस को स्ट्रेंग्थन करना बहुत ज़रूरी है।

D;k ehfM;k dh Hkfedk ij Hkh loky mBk, tk ldr gl ;gk iM U;t puy gA

मीडिया कम से कम स्वतंत्र तो है। यदि मीडिया को कंट्रोल कर दें जैसे कि इमरजेंसी के दौरान किया गया था या पाकिस्तान की मीडिया की तरह कंट्रोल कर दिया जाए तो स्थिति गंभीर हो जाएगी, तब भ्रष्टाचार पर बहस संभव नहीं हो सकेगी।मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। वह समाज का हिस्सा भी है। हो सकता है कि मीडिया भी भ्रष्टाचार से मुक्त न हो। हमारी न्याय प्रणाली स्वतंत्र है। हमारी इन संस्थाओं को और मज़बूत करने की आवश्यकता है। हमारे संवैधानिक ढाँचे में चेक्स ऐंड बैलेंस हैं। यदि एक गलती करता है तो दूसरा उसको पकड़ता है। मिनिस्ट्री में फाइनेशियल एडवाइजर का पूरा सिस्टम है। जैसे कि यह नियम है कि फाइनेशियल एडवाइजर को विभाग का सचिव ओवर रूल नहीं कर सकता है। उनमें मतभेद होने पर मामला वित्त मंत्रालय जाएगा।

D;k vki viu foHkkx dh Hkhrjh lajpuk e bl rjg dh leL;kvk e [kny dj dk;l dj ikr g ;k vki Lo;a dk c/kk gvk egl l djr gl

इस तरह की समस्या सीएजी की संस्था में नहीं है। यह एक स्वतंत्र संस्था है। इसका ना वेतन घटा सकते हैं और न ही सीएजी पर होने वाले खर्च को संसद कम कर सकती है। सीजीए को प्रभावित करना या हानि पहुँचाना कार्यपालिका के दायरे में नहीं आता है। इस मामले में हम बिल्कुल स्वतंत्र हैं। इसलिए बड़े–बड़े स्केण्डल को पकड़ने में हम लोगों की भूमिका रहती है। जैसा कि झारखण्ड में हमने रिपोर्ट दी थी, जिसमें उच्च अधिकारी एवं मंत्री पर भी आरोप थे। उन पर केस भी हुआ, विजिलेंस रेड भी हुई, फिर गिरफ्तार भी हुए।

vkid foHkkx dk dkb egRoi.k 0;fDRk euekuh djr g, ik;k tkrk g rk ,l e vki D;k dkjokb djr gl

अभी जो ढाँचा बना हुआ है उसमें मनमानी करना इसलिए सम्भव नहीं है कि आजकल आरटीआई ऐक्ट की व्यवस्था है। दस रुपये में आप संचिका की कापी माँग सकते हैं। अगर कोई ऑडिट ऑब्जेक्शन है और वह फैक्ट से सपोर्टिड है तथा

ऑडिट रिपोर्ट आ गई है, तो उसे दबाना किसी के लिए सम्भव नहीं है। चूँकि अगर आप दबाएंगे तो कोई रीज़न्स आपको रिकार्ड करना होगा उसमें आप पर्सनल वल्नेरीबिलिटी हो जाएगी। आडिट का रूप उतना निगेटिव भी नहीं है, जैसा मीडिया में आजकल आता है कि लोग डिसीजन नहीं ले पाते हैं। लोग सीवीसी और सीएजी से डरते हैं। मेरी निगाह में डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। अगर आपकी मंशा साफ है तो आप जो भी करना चाहते हैं वह सब नियम के अनुसार सम्भव है। हिन्दुस्तान में दो समस्याएं बहुत ही गंभीर हैं – एक इनएफिशिएन्सी और दूसरा करप्शन। मुझे नहीं पता कि दोनों में से ज़्यादा हानिकारक कौन है।

vkiu cgr lkj bLVhV;'ku e dke fd;k gA vkid lkFk cgr lkj lgdeh Hkh jg gkx rFkk vkid v/khu cgr cMk LVkQ Hkh jgk gkxk rk mud dke dju dh i)fr vkj <x l vki fdruh nj rd Lo; dk Lkr"V ikr g

ह्यूमन वीकनेस हर जगह होती है। हमारा जो स्टाफ है, उसमें भी हमने एक–दो केस पाए हैं, जिनमें ह्यूमन वीकनेस थी। जैसे कि जब मैं झारखण्ड में प्रधान महालेखाकार था तो मुझे अनौपचारिक जानकारी मिली कि हमारी जो ऑडिट पार्टीज हैं उनमें कुछ नहीं जाते या अगर तीन लोगों की ऑडिट पार्टी है तो उनमें से एक ही आदमी चला जाता है। ऐसी भी जानकारी हमें पता चली कि पाँच दिन का प्रोग्राम है तो दो ही दिन के लिए चले गए या चार लोगों की पार्टी है तो उसमें से एक ही आदमी चला गया और मान लीजिए कि किसी को पता चला तो उसमें से जो व्यक्ति उपलब्ध था उसने बाकी कर्मचारियों का सी.एल. का एप्लिकेशन पकड़ा दिया। सारी पार्टीज ऐसा नहीं कर रही थीं लेकिन कुछ पार्टीज ऐसा कर रही थीं। ये जब मेरी जानकारी में आया तो मैंने एक सर्कुलर निकाला। उसमें मेरा, (प्रिंसिपल एजी का) और डिप्टी एजी का मोबाईल नंबर था। मैंने यह नियम बनाया कि सरप्राइज चेक में कोई अनुपस्थित पाया गया तो यह कोई एसक्यूज नहीं होगा कि उन्होंने छुट्टी ले रखी थी। चूँकि यदि उन्हें छुट्टी लेनी है तो या तो मेरे फैक्स नं. पर फैक्स करें या ई–मेल करें। यदि यह भी सम्भव नहीं है जैसे कि किसी को रात को 12 बजे हार्ट अटैक आ जाए तो कोई सहकर्मी एसएमएस कर दें। सर्कुलर में यह भी प्रावधान था कि यदि औचक निरीक्षण में कोई कर्मचारी/अधिकारी अनुपस्थित पाया जाता है तो उन पर अविलम्ब अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाए। तीन–चार लोगों को हमने पकड़ा और उन चारों लोगों पर मेजर पेनलटी प्रोसिडिंग की गयी। उसके बाद ये जो बीमारी थी बन्द हो गई। तो ये ह्यूमन वीकनेसिस हर जगह होते हैं। हर विभाग में होते हैं, जो सीनियर आफिसर हैं, उनकी यह जिम्मेदारी है कि वो उनको पर्सनल लेवल पर लीड करें। जैसे कि यदि आप दफ्तर नौ बजे नहीं आते तो आप अपने सबआर्डिनेट को नहीं कह सकते कि आप 10 बजे क्यों आ रहे हो? अगर मैं जेएनयू के अपने ऑफिस में 11 बजे आऊँ तो किस मुँह से किसी को कहूँगा कि आप वक्त पर ऑफिस नहीं आते हैं। आफिस 5.30 बजे खत्म होता है और मैं 3 बजे ही चला जाऊँ, तो मेरी मोरल अथॉरिटी वीकेन हो जाएगी।

vkid ikl fofHkUUk ljdkjh ink vkj lLFkkuk e jgr g, dke dju dk ,d yEck vuHko gA bl vk/kkj ij vki ,d fgUnLrkuh d dke dju d <x] fQrjr vkj LoHkko dk d l n[kr g\ fgUnLrkfu;k d ckj e Hkh ckgj d n'kk e cMh vyx&vyx jk; j[kh tkrh gA [kk l dj tc ge if'peh n'kk e tkr g rk mudh dk;/ dju dh i)fr vyx gA mudh nf"V e ge ykx ,l g t l fd dkepkj] cbeku g ;k vufrdrk fgUnLrkfu;k e cgr T;knk gA vkidk bl ckj e D;k yxrk g\ bld ckj e vkidh viuh jk; D;k g

ऐसी मेरी राय नहीं है लेकिन यह एक समस्या है। हमारा जो सिस्टम है, वह इतना बिगड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए आप एक बिहार के लड़के को देखें, जो बिहार में रहता है। उसका काम करने और सोचने का तरीका बिहार में रहते हुए वहीं का है लेकिन वही लड़का दिल्ली विश्वविद्यालय में आकर टॉप कर जाता है। हमारे बैच में हिस्ट्री में मुश्किल से तीन–चार लोगों को फर्स्ट डिवीजन आई थी। मैं भी बिहारी था एक और छात्र भी बिहारी था। शायद दो या तीन बिहारी थे। वही बिहार का लड़का यहाँ पर आकर कैसे टॉप कर जाता है और उसे बिहार में रहकर पढ़ने में क्या तकलीफ होती है? क्योंकि वहाँ का सिस्टम कुछ यूनिवर्सिटीज का इतना खराब है कि पहले से बता सकते हैं कि अगले वर्ष कौन टॉप करेगा। तो मैं कहना चाहता हूँ कि व्यक्ति में नहीं व्यवस्था में दोष है। यही इंडियन माइक्रोसॉफ्ट का सीइओ बन सकता है तो यहाँ आकर काम करने में क्या परेशानी है। देखिए अमेरिका में इंडियन डाईस्पोरा बहुत सक्सेसफुल है। एक एवरेज इंडियन, एक एवरेज अमेरिकन से दो–तीन गुणा ज़्यादा सक्सेसफुल है। अगर आप में कूबत नहीं है, आप में मेरिट नहीं है व आप में एबिलिटी नहीं है, तो वहाँ कैसे सफलता मिलेगी।

d l ge bl l eDr gk l dr g\ vkiu t:j lkpk gkxkA D;k Hk"Vkpkj vkj vufrdrk dk nj fd;k tk l dr g

इसके लिए एक तो सिवफ्टनेस और सर्टेन्टी ऑफ पनिशमेंट बहुत ज़रूरी है। मान लीजिए कोई आदमी घूस ले रहा है या कोई क्राइम कर रहा है। अभी लोग क्राइम इस उम्मीद पर करते हैं कि यदि हम पकड़े जाएँगे तो छूट जाएंगे या फिर पकड़े ही नहीं जाएंगे। दूसरा यदि पकड़े भी जाएंगे तो क्या

होगा? मान लीजिए कि बैंक में कोई कर्मी घूस ले रहा है तो आप बैंक मैनेजर के पास जाएंगे। कोई एक्शन नहीं होगा तो आप चीफ मैंनेजर के पास जाएंगे। यदि उस कर्मी को जो सरकारी विभाग में है, उसे यह पता चले कि उस पर लगे हुए आरोपों की तत्काल निष्पक्षता से जाँच होगी, यदि वह दोषी पाया गया तो डेटरेन्ट पनिशमेंट मिलेगी तो वह गलत काम करने के पहले सौ बार सोचेगा।

,D'ku u yu okyk 0;fDr Hkh rk fgUnLrkuh gA rk 0;oLFkk dlh Bhd gkxhI

इस मैंटेलिटी को बदलना होगा। यह मैंटेलिटी ऊपर से बदलेगी। यह व्यवस्था नीचे से नहीं बदलेगी। सबसे पहले आपको अपने आपको बदलना होगा। अगर आप ये समझते हैं कि आप सारी दुनिया को लेक्चर देते रहेंगे और स्वयं उलटे–सीधे काम करते रहेंगे तो व्यवस्था कभी ठीक नहीं हो सकती। इसके लिए पहले स्वयं को बदलना होगा और अगर नहीं बदलेंगे, तो आप अपना मॉरल राइट खो देगें। हम लोगों ने जहाँ–जहाँ काम किया, जैसे कि जयपुर, केरल, बिहार आदि में मैं एकाउंटेंट जनरल था। मेरे खिलाफ हड़ताल भी हुई। मेरा दफ्तर 23 दिन बंद रहा। उस समय मुझे यूनियन के प्रेसीडेंट, वाइस प्रेसीडेंट, सेक्रेटरी और ज्वायंट सेक्रेटरी को मजबूरी में डिसमिस करना पड़ा। चूँकि हमारे आफिस में भी समस्याएँ और भ्रष्टाचार था। लोगों की शिकायतें थीं। गरीब आदमी नहीं आते थे। उन्हें न्याय नहीं मिल पाता था। तो आपको उसके लिए कुछ तकलीफ उठानी पड़ेगी। जब व्यवस्था एक बार रेल की पटरी पर आ जाएगी तब वह स्वच्छंद ढंग से चलेगी। लेकिन फॉर्म में आने के लिए कुछ टर्म्वायल होगा।

vkiu vHkh ^vfoyEc* 'kCn ckyk bl l e> yxrk g fd vkid vnj fgnh dk dkb xgjk lLdkj fNik gI bld ihN vkidk vH;kl g ;k dN vkj--- I

हिंदी शुरू से हमारी मातृभाषा रही है। हम हिंदी पढ़ते रहे हैं। बचपन में एक किताब 'गुनाहों का देवता' पढ़ी थी। छः, सात, दस और बीस बार पढ़ी होगी। हम उससे अभिभूत थे। थोड़ी रोमांटिक टाइप की थी। उसके बाद जब मैं यूनिवर्सिटी आया तो दुष्यंत कुमार की 'साये में धूप' ने बहुत अमिट छाप छोड़ी। मैंने प्रेमचंद, अज्ञेय, धर्मवीर भारती आदि को पढ़ा... मतलब कि पढ़ते रहे हैं। अभी भी पढ़ते हैं। उपन्यास पढ़ते हैं।

vkid fi; y[kd dku l g I

मैं अज्ञेय को बहुत पसंद करता हूँ। हमें अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' बहुत पसंद है। मोहन राकेश, बच्चन को पढ़ा है। 'नीड़ का निर्माण फिर' पढ़ा। मुझे रश्मिरथी, उर्वशी से ज़्यादा प्रिय है। मुझे एक जमाने में रश्मिरथी शुरू से अंत तक याद थी। मुझे बच्चन की मधुशाला बहुत पसंद है। हमने कॉलेज के दिनों में एलपी का रिकार्ड खरीदा था मन्ना डे की आवाज़ में।

D;k vkiu vK;] cPpu ;k /keohj Hkkjrh vkfn e l fdlh dk n[kk HkhI dHkh fdlh l eykdkr gbI

– नहीं

vc ge t,u;w dh rjQ pyr gA D;kfd vki t,u;w e dbl o"kk l gA ge tkuuk pkgr g fd vkiu vyx&vxy txgk ij dke fd;kA ogk cgr vyx rjg dk okrkoj.k jgk gkxkA ckdh LkLFkkuk vkj ckdh fo'ofo|ky;k l t,u;w e D;k [kfc;k ;k phtt vkidk vyx yxh gI

इस मामले में मैं जेएनयू को बहुत ऊपर रखूँगा। जैसे कि जेएनयू की नीति इन्क्लूसिव है । समाज के सभी तबके से लोग यहाँ आते हैं। आज के समय में जो एमसीएम स्कॉलरशिप है, उसे यूजीसी नहीं देती है, जेएनयू अपने विद्यार्थियों को देता है। जेएनयू के पास इंटर्नल रिसीट बहुत कम है। इसके बावजूद हम उन लोगों को छात्रवृत्ति देते हैं, जिनके पास कोई साधन नहीं हैं। ऐसा नहीं हो सकता है कि किसी बच्चे का एडमिशन जेएनयू में हो जाए और वह पढ़ने में अक्षम हो या उसके पास पैसा न हो। ये बहुत बड़ी चीज है। यहाँ की फैकल्टी में विश्वस्तर के लोग उपलब्ध हैं। जिस तरह का काम यहाँ होता है, वह उत्कृष्ट है। अपने समय में मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास ऑनर्स सेकेण्ड ईयर पढ़ते हुए जेएनयू से इवनिंग में फ्रेंच पाठ्यक्रम किया था। उस समय जेएनयू केवल सोशल साइंसिस के लिए ही जाना जाता था। विमल प्रसाद, विपिन चंद्रा, योगेन्द्र सिंह इन्हीं लोगों का नाम जाना जाता था। लेकिन आज के दिन में जो फिजिकल और नेचुरल साइंसिस हैं, उनमें भी जेएनयू का काफी नाम है और हम लोगों के पास मजबूत इंफ्रास्ट्रक्चर भी है। जैसे कि स्कूल ऑफ लाइफ सांइसिस, एडवांस्ड इंस्ट्रूयूमेंटेशन रिसर्च फेसिलिटी और प्रोजेक्टस हैं। जेएनयू में एक सिस्टम बना हुआ है और मेरी नज़र में फाइनेंस का कार्य टू हेल्प है न कि टू स्टॉप या टू हिन्डर। सब कार्य नियमानुसार हो, तत्परता से हो, यही हमारी उपलब्धि है। जेएनयू का उद्देश्य क्या है – टीचिंग एंड रिसर्च। टीचिंग एंड रिसर्च में सहयोग करना प्रशासन का कार्य है। प्रशासन और वित्त का कार्य है कि जो भी पैसा कहीं से मिला हो उसका सही रूप में इस्तेमाल हो, इसमें सहयोग करना।

oreku le; e Nk=k dh l[;k yxkrkj c< jgh gA vkchlh dh lhV e 30 ifr'kr dk btkQk gvk gA bl nf"V l D;k ge viu bÝkLVDpj e dN foÙkh; vHkko ikr gI

वित्तीय अभाव तो बहुत ज़बरदस्त है। देखिए बारहवीं प्लान में जेएनयू को जितना पैसा मिला है, वह ग्यारहवीं प्लॉन से सिर्फ सवा लाख ज़्यादा है। बारहवीं प्लॉन में जेएनयू को पांच सालों के लिए सिर्फ 204 करोड़ रूपये मिले हैं। इससे सवा लाख

कम इलेवन्थ प्लॉन में मिले थे। अब आप देखिए कि इंफ्लैशन के चलते पिछले 5–8 सालों में रियल वैल्यू ऑफ मनी कितनी कम हो गई है। आज के दिन में हमारा जो बजट है वह करीब–करीब सालाना सिर्फ चालीस करोड़ का है, जो बहुत कम है। जिसके चलते बिजली, पानी, हॉस्टल रिपेयर का खर्चा, लैबोरटरी एक्सपेंडिचर के लिए भी पैसा नहीं है। हम लोगों के पास प्रॉपर्टी टैक्स देने के लिए भी पैसा नहीं है। यूजीसी ने बहुत मुश्किल से प्रॉपर्टी टैक्स का पैसा दिया है। इस सब में हमारा कोई वश नहीं है। आप बिजली का खर्चा कम करने के लिए पंखा और ट्यूब लाइट को कम इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन प्रॉपर्टी टैक्स के बारे में क्या करेंगे? मैंने इस बारे में यूजीसी और एमएचआरडी को बताया कि इसे कम करना जेएनयू के वश में नहीं है। इसलिए हम लोग एडवॉन्स में पेमेंट कर दें और रिबेट मिल जाए। इससे ज़्यादा कोई कुछ नहीं कर सकता है। बहुत तकलीफ के साथ डेढ़ साल लड़ने के बाद अभी इन्होंने चार दिन पहले हमें प्रॉपर्टी टैक्स का पैसा दिया। तो अभी जेएनयू की वित्तीय स्थिति बहुत ही नाजुक है।

;thlh d ikl D;k dkj.k g fd og ctV ugh n ik jg g ;k de n jg gA

यूजीसी का कहना है कि एमएचआरडी ने यूजीसी को कम बजट दिया है। इसलिए वो दे नहीं पा रहे हैं। जैसे नॉन प्लान, नॉन सेलरी, आइटम जिसमें बिजली पानी आता है। वहाँ इतनी मुश्किल है कि किसी तरह से हम लोग काम चला रहे हैं। इसके लिए कई बार पैसा डाईवर्ट भी करना पड़ता है क्योंकि बिजली और पानी आवश्यक चीजों में आते हैं। इसको कटवाना सम्भव नहीं है।

t,u; Qyh jftMfU'k;y ;fuoflVh gA bl vk/kkj ij D;k ;thlh dk dN fj;k;r djuh pkfg,A

हमने यूजीसी से पैसा माँगा। हम कई अन्य जगहों से भी पैसा माँग रहे हैं। हम बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना और मिनिस्ट्री ऑफ सोशल जस्टिस एंड एम्पावरमेंट से कोशिश कर रहे हैं। एक और मिनिस्ट्री है – डोनर मिनिस्ट्री। वहां से नार्थ ईस्ट के लिए ट्राई कर रहे हैं। वहां के संसद सदस्य आए थे। उन्होंने भी यूनिवर्सिटी को आकर देखा है। उन्होंने भी एक छात्रावास प्रपोजल के लिए यूनिवर्सिटी को इनप्रीसिंपल स्वीकृति दी है, ताकि हमारे बच्चों को रहने के लिए जो किल्लत है वो दूर हो सके। यूपीओई यानी यूनिवर्सिटी ऑफ पोटेंशियल फॉर एक्सिलेंस की टीम आयी थी। उस टीम ने भी जेएनयू को काफी सराहा और हमें उम्मीद है कि वहां से भी 60 करोड़ रुपया मिलेगा। 'नाक' का जो एक्रिडेशन है, वह जेएनयू का सबसे हाईएस्ट एक्रिडेशन है पूरे देश में। यह भी हमारे लिए बहुत इज़्ज़त की बात है कि हमें सबसे ऊँची रैकिंग मिली है।

vki dk t,u; e jgr g, rhu&pkj lky rk gk x; gkxA bl nkjku D;k vki dk yxk fd vki t,u; e dN u; dke 'k: dj ldr gA ;k dN l/kkj dju dh xtkb'k vHkh ckdh gA ,l dku l dk; g] D;k vki crk,xA

सबसे ज़्यादा सुधार करने की गुंजाइश है प्रशिक्षण में। प्रशिक्षण में न केवल गुंजाइश है बल्कि जरूरत भी है। उसमें जेएनयू का जो एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर है अगर आप वह देखें तो एक आदमी एक स्ट्रीम में ज्वाइन करता है जैसे स्टेनोग्राफर है लेकिन स्टेनोग्राफर से प्रमोशन होकर वह असिस्टेंट फाइनेस आफिसर भी बन जाता है या कोई मैस हेल्पर है वह प्रमोट होकर लैब असिस्टेंट बन जाता है, तो जब तक आपको उसका प्रशिक्षण नहीं दिया जाएगा तो जो नया उत्तरदायित्व आपको सौंपा जा रहा है, उसका वहन आप कैसे कर सकेगें। यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है।

D;k ifVdyj ikLV dk if'k{k.k gkuk pkfg,A D;k vki mle lhfu;kfjVh l l{ke gk ik;xA

सीनियॉरिटी से नहीं होगा। स्ट्रीम अलग होते हैं। मिनिस्ट्री में कोई पीए है वह पीए से सीनियर पीए और सीनियर पीए से पीएस और पीएस से पीपीएस बन जाता है। उसे स्केल मिल जाता है, लेकिन वह काम वही करता है। नेचर आफ जॉब सेम रहता है। ऐसा नहीं होता है कि ड्राइवर प्रमोट होकर कुक बन जाएगा। एक ड्राइवर बहुत अच्छी गाड़ी चलाता है लेकिन उसे शायद खाना बनाना नहीं आता होगा। अगर उसे सीनियर हेड कुक बना दिया तो वह कैसे खाना बनाएगा? उसके चलते यहाँ लोगों को बहुत दिक्कत हो रही है। जैसे मुझे मेरी सर्विस में सरकार की ओर से इंडियन इंस्टीटूयूट ऑफ मैंनेजमेंट, बंग्लौर और मंसूरी में ट्रेनिंग के लिए भेजा गया था। विदेश में भी कई बार गया हूँ। मैंने यूनाइटेड नेशंन का, इंटरनेशनल सीबेड अथॉरिटी, किंग्सटन का, वर्ल्ड ट्यूरिज्म ऑरगेनाइजेशन, मैड्रिड एवं यूनाइटेड नेशन कमिशन फार रेफ्यूजीज, वेनेजुवेला आदि इन सब का ऑडिट किया है। तो एक जो एक्सपोजर होता है वह एक्सपोजर जो एक सर्विस ऑर्गनाइज करती है, वो अधिकारी चाहे किसी भी स्तर का हो। मैं गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के एडिशनल सेक्रेटरी के ग्रेड में हूँ। इसी तरह जेएनयू के क्लर्क और असिस्टेंट की भी ट्रेनिंग और रिफ्रेशर ट्रेनिंग होनी चाहिए। मैंने जेएनयू में इस तरह का कोई सिस्टम नहीं देखा है। इस बारे में मैंने लोगों से बात की है। जब तक यह नहीं होगा तब तक कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए एफिशियंट बनना संभव नहीं है। क्योंकि बहुत सी चीजें आपको समझ में ही नहीं आएंगी, जब आपका जॉब प्रोफाइल बदल जाता है। विशेषतः उन लोगों के लिए जिनकी उम्र ज़्यादा है। जैसे यहाँ बहुत सारे सीनियर लोग हैं जिन्हें

कम्प्यूटर का ज्ञान नहीं है। आजकल के जमाने में बिना कम्प्यूटर के कुछ भी संभव नहीं है। यह बहुत ही ज़रूरी है। जिनकी सर्विस चार–पाँच साल बची हुई है, हम उनसे अनुरोध करके उन्हें सारी सुविधाएँ मुहैया कराएं ताकि उनको प्रशिक्षण प्राप्त हो। उसके बिना जेएनयू के सिस्टम को इम्प्रूव करना संभव नहीं है।

e| jktHkk"kk fganh d| ckj| e| dN ckr djuk pkgxkA vPNk gekj| ;gk| t|l| ikfy|;keV deVh vkrh gA db| ckj mudh ;g f'kdk;r jgrh g| fd t|,u;| e| cgr de dke fganh e| gk| jgk gA vkid| n[ku e| D;k ,|lk vkrk g|\ b|ld| ckj| e| vkidh D;k jk; g|\ jktHkk"kk fganh dk ;gk| fØ;kUo;u ckdh ;fuofl|Vh dh r|yuk e| fdruk g|\ m|ldk mi;kx fd|l gn rd gk| ikrk g|

इसमें कुछ तो जानकारी का अभाव है। जानकारी का अभाव इसलिए है कि राजभाषा का क्रियान्वयन शिक्षण प्रक्रिया में अपेक्षित भी नहीं है। राजभाषा का जो वार्षिक कार्यक्रम है जो हमारे पास आता है और जो लक्ष्य उसमें निर्धारित किए गए हैं, उसके बारे में कुछ भ्रम है। कई फैकल्टी मैम्बर्स कहते हैं कि हम साइंस पढ़ाते हैं तो हम हिंदी में साइंस कैसे पढ़ा सकते हैं। हमारे पास स्टूडेंट्स दूसरी जगह के हैं। यह स्थिति इसलिए बन गई कि लोगों को यह समझ में नहीं आता है कि राजभाषा विभाग क्या चाहता है। उसमें जानकारी का अभाव है। राजभाषा या भारत सरकार की अपेक्षा क्या है। भारत सरकार या राजभाषा की यह अपेक्षा नहीं है कि शिक्षण और प्रशिक्षण में हिंदी का उपयोग करें। आप किसी भी भाषा में पढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं। हिंदी में पढ़ाएं, फ्रेंच या अंग्रेजी में पढ़ाएं। लेकिन हमारा जो प्रशासनिक कार्य है उसमें कुछ चीजों की बाध्यता और अनिवार्यता है। जैसे कि धारा 3(3) के अनुसार रबर की मोहरें, नाम पट्ट, सर्कुलर इत्यादि द्विभाषी होने चाहिए। हम 'क' क्षेत्र में आते हैं तो जो भी पत्र आए उसका जवाब आपको हिंदी में देना है। जो पत्र आप जारी करें, वह हिंदी में होना चाहिए। दूसरी बात हमारे पास जो डाटाबेस है वह भी सही नहीं है। उनकी जो प्रश्नावली आती है, उसके हिसाब से नहीं है। जैसा कि पिछले बार हमें दिक्कत हुई थी जो आफिशियल लैंग्वेज की पार्लियामेंट्री कमेटी आयी थी उसमें जेएनयू, दिल्ली विश्वविद्यालय की तुलना में बेहतर स्थिति में था। दिल्ली विश्वविद्यालय का निरीक्षण रद्द हो गया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का निरीक्षण भी रद्द हो गया था। हमारा निरीक्षण रद्द नहीं हुआ। कमेटी के माननीय सदस्यों ने हमें कुछ सुझाव दिए, जिनका हम पालन कर रहे हैं। जैसे कि नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की भागीदारी नहीं है।

vkfQl l| tku d| ckn ;k NqV~Vh okyk fnu vkidh dN vkj vfHk:fp;k| gkxh\ D;k vki dHkh viu| fnu dk viuh rjg l| fcrkuk pkgr| gkx|\ t|l| fd fQYe] E;ftd vkj fFk,Vj d| lkFk -----A

परिवार के साथ समय बिताते हैं। कुछ किताबें पढ़ते हैं। अभी मैंने किताब पढ़ी – कमेंटरीज आफ लिविंग। जे. कृष्णामूर्ति की किताब है। बड़ी अच्छी किताब है। मुझे बहुत अच्छी लगी। फिल्म देखते हैं। जैसे हमारा इंस्टीट्यूट है। इंस्टीट्यूट ऑफ सिविल सर्विसेज में अच्छी फिल्म दिखाते है। वहां फिल्म देखते हैं।

vkidh fnYkPkLih fQYeka e| fdruh g|

देखिए अभी की फिल्मों में मेरी बहुत ज़्यादा दिलचस्पी नहीं है। जैसे कि प्रकाश झा की फिल्में आती हैं वो मुझे पसंद हैं। अभी एक फिल्म आई थी नक्सल अभियान के ऊपर वह हम देखने गए थे। चूँकि मैं झारखण्ड में रहा हूँ और मेरा मानना है कि जो भी नक्सलाइट समस्याएँ हैं उनका समाधान होना चाहिए। वहां की मूल समस्याओं का कारण क्या है? समाज में जो भी समस्याएँ और विषमताएँ परिलक्षित होती हैं उससे समाज में तनाव बढ़ेगा। उसका समाधान किया जाना चाहिए।

vkid| fi|; vfHkurk vkj vfHkus=h dkSu g|

हमारे समय में तो अमिताभ बच्चन, हेमा मालिनी आदि ये चलते थे। पुरानी फिल्मों के गाने मुझे बहुत पसंद हैं। जिनमें 50–60 के दशक वाले रोमांटिक गाने भी हैं। जैसे कि आएगा आने वाला..... आदि बहुत सारे गाने इसमें शामिल हैं। रफी, मुकेश, हेमन्त कुमार और तलत महमूद आदि भी हैं। मुझे तलत महमूद की थरथराती आवाज़ में 'जलते हैं तेरे लिये, मेरी आँखों के दिए', 'तसवीर बनाता हूँ, तसवीर नहीं बनती' पसंद है। उस जमाने में मुगले–आज़म न जाने कितनी बार देखी थी।

vc e| vki l| vkf[kjh loky iN jgk g| fd t|,u;| d| tk Nk= g| vkj Nk= l|?k gA mudh Hkfedk d| ckj| e| vki D;k lkpr| g|\ D;k fdlh idkj dk dkbZ lans'k vki mud| fy, nuk pkgr| g|\ t|,u;| dh fHkUurk fd|l :i e| gkuh pkfg, vkj Nk= m|le| fd|l rjg dh Hkkxhnkjh dj ldrk g|

छात्रों की भूमिका तो यहाँ बहुत अच्छी है, बहुत जागरूक हैं और जो विषय यह उठाते है वो बिल्कुल सही और समसामयिक होते हैं। इसलिए जेएनयू को एक मॉडल रूप में जाना जाता है। जेएनयू इज ए डिफरेंट यूनिवर्सिटी और एक डिफरेंट क्लचर है। जेएनयू से बहुत बड़े–बड़े लोग निकले हैं। यहाँ का छात्र समुदाय बहुत जागरूक है। मेरा संदेश है कि अपने आप में विश्वास रखिए, जो भी काम करें, पूरा दिल लगा के करिए। लेकिन जो आप कर रहे हैं वह ठीक होना चाहिए, इसके बारे में अपने आप को आश्वस्त कर लें।

vkidk 0;fDrRo fdl I i<kkfor g\ ft Idh otg I vki Icd le{k viuh ckr i<kko'kkyh <x I j[kr gA

यदि आप सर्टेन नहीं हैं और आपको अपने ऊपर भरोसा नहीं है तो अपनी बात न कहें। अगर आप बोलें तो ऐसा जैसा कि हम ऑडिट में करते हैं 'की डॉक्यूमेंट' की बिना पर। यदि कोई कहेगा कि किसी सर्कुलर में ऐसा लिखा है तो मैं कहूँगा कैसे पता, मुझे सर्कुलर लाकर दिखाइए। हरेक चीज को आप पहले वेरिफाई करें। गलत चीज बोलने से बेहतर है कि आप न बोलें और दूसरी बात है कि जो भी नियम हैं उनकी अद्यतन जानकारी आपके पास होनी चाहिए। मैं जेएनयू प्रशासन के समस्त अधिकारियों से यह कहना चाहूँगा कि नियमों के बारे में स्वयं को अद्यतन रखना बहुत ज़रूरी है। नहीं है तो उनको प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। क्योंकि यहाँ के रिक्रूटमेंट सिस्टम में विभिन्न बैकग्राउंड के लोग आते हैं। अलग–अलग संस्थाओं से अधिकारी गण यहाँ आते हैं। कोई किसी इंस्टीट्यूशन से आया है, कोई किसी अन्य इंस्टीट्यूशन से आया है। इसलिए जब तक आप नियम को नहीं जानेगें, तब तक आप उसका पालन भी नहीं कर पायेंगे। उसके लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

vkiu dHkh dfork] dgkuh miU;kl vkj ukVd vkfn fy[kk g\ D;k vkidh y[ku e #fp jgh g

अभी तो नहीं है लेकिन कभी रही थी। स्कूल स्तर पर कहानी लिखी थी जो किसी पत्रिका में प्रकाशित भी हुई थी।

vkiu t,u;I ifjlj if=dk rk n[kh gkxhA D;k vki if=dk I Ir"V g

बहुत बढ़िया और बहुत ही सार्थक प्रयास है। शायद बीच में यह बंद हो गई थी, जिसे हमारे कुलपति तथा अन्य के प्रयासों से इसका दोबारा प्रकाशन प्रारंभ किया गया है। मैंने इस पत्रिका का पुरजोर समर्थन किया था कि राजभाषा कमेटी को दिखाने के लिए तो हमारे पास कोई पत्रिका तो होनी चाहिए। राजभाषा कमेटी पहले कहती थी कि आपकी कोई पत्रिका प्रकाशित होती है तो हम कहते थे कि नहीं। लेकिन अब हम इस जेएनयू परिसर पत्रिका को दिखा सकते हैं। यह सार्थक प्रयास है। अगर हम कोई वाद–विवाद प्रतियोगिता और निबन्ध प्रतियोगिता कराते हैं तो उसको इसमें शामिल किया जाना चाहिए।

t,u;I ifjlj if=dk dI fy, vkidI eu eI dkbI I>ko g\ fd ge bI if=dk dk vkj dlI cgrj cuk Idr g\ rk crkb, geI vPNk yxxkA

इसमें भागीदारी और बढ़ाइए। इसका प्रसार–प्रचार, आधार और मजबूत कीजिए। इसमें पेज बढ़ाए जा सकते हैं। इसके पेजों को रंगीन भी बनाया जा सकता है। पैसा राजभाषा कमेटी और सरकार से भी लिया जा सकता है। इसमें होने वाले एक्सट्रा एक्सपेंडीचर को मैनेज किया जा सकता है। आप हमें इसके बारे में बताएं। हम इसके लिए प्रयास करेंगे। यह पत्रिका साल में दो बार निकलती है, इसे साल में चार बार भी निकाला जा सकता है। हमें इसके लिए प्रयास करना चाहिए। एक प्रति 40 रुपये की पड़ती है और हम 2000 प्रतियाँ छपवाते है। इसका मतलब है कि 80000 हजार रुपये लगते है और साल में 1लाख 60 हजार रुपये लगते हैं। इसका मतलब है कि आपको साल में 3 लाख 20 हजार रुपया दे दिया जाए तो साल में चार बार पत्रिका निकाली जा सकती है। इसके लिए प्रयास करें। हम सहायता करेगें। इसमें बाहर के लेखन को भी शामिल कर सकते हैं लेकिन हमारे जेएनयू में बहुत प्रतिभा है। उसका इस्तेमाल भी इसमें होना चाहिए। इसमें जेएनयू के शिक्षकों, अधिकारियों, कर्मचारियों और छात्रों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इसमें बाहर से जेएनयू में होने वाले लेक्चर्स की रिपोर्टिंग भी होनी चाहिए। इसमें अधिक से अधिक भागीदारी हो, इससे पत्रिका का स्तर बढ़ेगा।

jpuk,¡ vkef=r g\

t,u;I ifjlj के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। कृपया अपने लेख, कहानी, कविता, समीक्षा आदि क्रुतिदेव–10 फोंट में हार्ड कापी सहित निम्नलिखित पते पर भेजें या मेल करें : संपादक, **t,u;I ifjlj]** हिंदी एकक, 301, प्रशासनिक भवन, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067, फोन नं. 011 26704023

ई–मेल : hindiunit@mail.jnu.ac.in और jnuparisar@mail.jnu.ac.in

lekt'kkL= dk ekfyd cukus ds fy, viuh Hkk"kk dk gksuk vko';d gS

प्रो. विवेक कुमार*

(प्रोफेसर विवेक कुमार से सुनीता की बातचीत)

ts,u;w ls viuk lEcU/k ds ckjs esa crk,a A

उत्तर भारत में 1980 के दशक तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्रों में सिविल सेवा परीक्षा के लिए बहुत मशहूर था। उत्तर भारत के लोगों का सपना होता है कि उनका बच्चा आई.ए.एस. बने। वे अपने बच्चों को सत्ता के केन्द्र में भेजना चाहते हैं। 1990 तक आते–आते लोग जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय को सिविल सेवा परीक्षा के कम्पटीशन के लिए एक बेहतर विश्वविद्यालय मानने लगे। इसलिए वे अपने बच्चों को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शिक्षा दिलाने के लिए उन्मुक्त होने लगे। मैं लखनऊ से हिंदी माध्यम से एम.ए. करके जेएनयू आया था। वहां पर बी.ए. दो वर्ष का होता था और यहां पर बी.ए. की तीन वर्ष की डिग्री को ही मान्यता थी। अतः मैंने एम.ए. का प्रमाणपत्र लगाकर जेएनयू में एम.ए. में फिर से रजिस्ट्रेशन ले लिया। लेकिन मुझे उम्मीद नहीं थी कि मुझे दाखिला मिल जाएगा। उस समय विवरण पुस्तिका 25 रुपये और फार्म 10 पैसे का होता था। आप एक विवरण पुस्तिका के साथ कितने भी फार्म ख़रीद कर भर सकते थे। मैंने केवल एक विषय समाजशास्त्र में फार्म भरा था। उन दिनों पंजीकरण ओल्ड कैम्पस में होता था। मैंने यहाँ एम.ए. में दाख़िला ले लिया तथा फिर यहीं से मैंने एम.फिल. और पीएच.डी. भी की। मेरे शोध निर्देशक प्रो. नन्दू राम थे। एम.फिल. पूरा करने के पश्चात मैंने कुछ दिन टाटा स्कूल आफ सोशल साइंस में पढ़ाया, लेकिन पीएच.डी. पूरी करने के लिए पढ़ाना छोड़ दिया और वापस आकर पीएच.डी. की पढ़ाई की। अपनी पक्की नौकरी छोड़ कर पीएच.डी. की पढ़ाई पूरी करने के लिये मेरे परिवार वालों ने, सहयोगियो ने और साथ ही साथ मेरे अध्यापकों ने भी मेरी बहुत खिंचाई की थी। परन्तु आज वे सब मुझसे कहते है कि तुमने उस समय ठीक निर्णय लिया।

D;k vkidks ts,u;w ds ekgkSy esa lkEkktL; fcBkus esa fnDdrsa vk;h Fkha A

हाँ, एक सांस्कृतिक झटका तो लगा। विशेषकर स्त्री और पुरुष सम्बन्धों को देखकर। पहली बार खुले में लड़कियों को राजनीति में सक्षम रूप से नारे लगाते हुए देखा। हम लोगों का समाजीकरण पित्तृसत्ता व्यवस्था में हुआ था तो हमारी दृष्टि में स्त्रियों को दोयम दर्जे का स्थान प्राप्त था, जिस परिवेश से हम आते हैं, उसमें पुत्र को कुलदीपक समझा जाता है। इन तथ्यों के प्रति घर में हमारी सोच को परिमार्जित नहीं किया गया था। घर में खाने के बाद अपने जूठे बर्तन उठाकर रखने तक का प्रचलन अमूमन न के बराबर होता है। लेकिन जेएनयू में लैंगिक एवं वर्गीय समानता का व्यवहार देखने को मिला। यहां होस्टल में अपने बर्तन स्वयं उठाकर रखना पहली बार हमारी सोच का हिस्सा बना। यहाँ पर मेस वर्कर के साथ भी खाना खाया जाता है। हममें एक और परिवर्तन यह आया कि यहाँ आकर हम लोग अपनी गरीबी पर शर्मिन्दा होना भूल गये। उस समय जेएनयू के छात्रों में इस बात पर बहस होती थी की कौन ज़्यादा गरीब है। हमें अपनी उस गरीबी पर गर्व महसूस होता था।

;gka ds ekgkSy dh fdl phtus vkidks lclsa vf/kd iHkkfor fd;k A

अपनी भूमिका आपको स्वयं तय करनी होती है। आपकी भूमिका का चयन आपके मूल्य करेंगे कि आपको कैसे जीना है। मैंने जिस समाज में जन्म लिया है, उस समाज का हमारे ऊपर कर्ज़ है। हमें अपने समाज से कुछ सहूलियत मिलती हैं। अगर मैं अपने कृत्यों से अपने समाज का कर्ज़ नहीं उतारूँगा तो दूसरी भूमिका में भी सच्चाई से कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाऊंगा। प्रत्येक भूमिका अंतःसम्बन्धित होती है। यदि एक के साथ आप न्याय नहीं कर पा रहे हैं तो दूसरी के साथ कैसे न्याय कर पायेंगे। इनमें अंतर्द्वंद्व हो सकते हैं। जेएनयू में आपको स्वच्छन्द वातावरण मिलता है, जिसमें आप अपनी परिस्थिति और भूमिका दोनों को खुलकर जीते हैं। आप में कुवत और सलाइयत है, हिम्मत और ज्ञान है तो आप यहां पर अपनी बात को मनवा सकते हैं। आप पर कोई पहरा नहीं लगा सकता है। मुझे यहाँ पर आकर अपनी योग्यता तथा अनेक गुणों के बारे में स्व–विश्वास जागृत हुआ। मैंने इस विश्वविद्यालय में अपनी अस्मिता, ज्ञान और सामाजिक सरोकारों को खुलकर जिया है। सरोकारों से मेरा मतलब है कि मैं किस वर्ग के लिए बोलता हूँ, मेरी राजनीतिक प्रतिबद्धता कहां पर है। इनको मैंने कभी नहीं छुपाया। ये ज़रूर है कि कुछ लोगों ने इस आधार पर मुझे और मेरे व्यक्तित्व को संकुचित करने का प्रयास किया लेकिन मेरे कुछ और भी सरोकार हैं, जिन्हें लोग स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु मैंने अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को अपने प्रोफेशनल जीवन पर कभी हावी नहीं होने दिया है। यहां के गरिमामय परिवेश में मैं अपने पर्सनल एवं प्रोफेशनल जीवन को अलग–अलग जीता हूँ और मुझे खुशी है कि मैं अपने प्रोफेशनल उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभा पा रहा हूँ।

*साक्षात्कारदाता सामाजिक विज्ञान संस्थान में प्रोफेसर हैं।

D;k fgnh ek/;e d fo|kFkh gkus d dkj.k vkidk d{kk e HknHkko >yuk iMk l

कक्षा में शिक्षकों के व्यवहार से ऐसा कभी प्रतीत नहीं हुआ कि मेरी अस्मिता के साथ दुर्व्यवहार किया गया है। अंग्रेज़ी में कमी के कारण कभी स्टार छात्र नहीं बन पाये लेकिन हिंदी बोलने वाले सारे छात्र फिसड्डी भी नहीं रहे। कई अंग्रेज़ी बोलने वाले सवर्ण छात्रों के हमसे ख़राब ग्रेड आये थे। हम आरक्षित वर्ग से आये थे लेकिन अनारक्षित वर्ग के छात्रों से हम पीछे भी नहीं रहे। हम किसी मामले में उनसे पीछे नहीं थे। ख़ूब मेहनत से पढ़ते थे और अधिक से अधिक मौलिक सोच विकसित करने का प्रयास करते थे। हमारा विषय समाजशास्त्र था न कि अंग्रेज़ी। समाज की मौलिक जानकारी एवं स्व–चेतना हमें हमेशा किताबी ज्ञान वाले छात्र से कहीं आगे ले जाती थी।

D;k fo|kFkh thou d nkjku vkidh lkfgR; i<u e #fp Fkh l

विद्यार्थी जीवन में साहित्य पढ़ने में अत्यधिक रुचि नहीं थी, लेकिन मैं आपको एक कविता की पंक्तियां सुनाना चाहता हूँ जिससे आप मेरी साहित्यिक कल्पनाशीलता का अंदाजा लगा सकते हैं –

जीवन के अंधकारमयी रास्तों में भर रहे
जीने के रंग,
जिएंगे जिएंगे बेबसी, भुखमरी और भ्रष्टाचार के संग
उनके फटे हुए आचरणों को सिएंगे,
उनके झूठे वादों पर ही जिएंगे,
मचती है मानवता में किसके लिए जंग
क्या बदलेगा जीना, बेबसी, भुखमरी और भ्रष्टाचार के संग

मेरा नाटक, संगीत और राजनीति में रुझान था। हमारा एक सांस्कृतिक समूह था, जिसका नाम था जुगनू। मैं ड्रामा क्लब का कनविनर भी बना। मैंने हबीब तनवीर जैसे व्यक्तियों के साथ जेएनयू में नाटक और कार्यशाला में भाग लिया। हमने जेएनयू के ओपन एअर थिएटर में 'Mid Night Dream?' का हिंदी रूपान्तर 'सपना' नाम से प्रस्तुत किया था। उसका उद्घाटन करते हुए वाइस चासंलर प्रोफेसर वाई.के. अलघ ने कहा था कि 'मैं बहुत सुखद महसूस कर रहा हूँ कि जब मैं छात्र जीवन में था तो हबीब तनवीर ने मेरा एक नाटक डारेक्ट किया था और आज जब मैं वाइस चान्सलर हूँ तो मेरे विश्वविद्यालय में वे रंगमंच की नामचीन हस्ती के रूप में यहाँ मौजूद हैं।'

D;k lekt'kkL= dh f'k{kk fgnh ek/;e l nh tk ldrh g l

क्यों नहीं ? ज़रूर हिंदी में शिक्षा दी जा सकती है। परन्तु कुछ विषयों को पढ़ने में ज़्यादा परेशानी होती है जैसे पद्धति शास्त्र, ज्ञान मीमांसा तथा सामाजिक अनुसंधान आदि। 'मेथोडोलॉजी ऑफ सोशल साइंस' अर्थात् 'सामाजिक विज्ञान का पद्धतिशास्त्र' पढ़ाते हुए मैंने कई बार यह महसूस किया है कि हिंदी माध्यम के छात्र सामाजिक विज्ञान के तथ्यों, सिद्धांतों और अवधारणाओं को समझने में परेशानी का अनुभव करते हैं। उनको ज्ञान मीमांसा (इपिस्टेमोलॉजी) को समझने में भी परेशानी होती है। इसका समाधान रेमीडियल क्लास के माध्यम से किया जाता है, लेकिन इस प्रक्रिया से मैं बहुत संतुष्ट नहीं हूँ। इस समस्या को एक सोची समझी रणनीति के तहत सुधारा या व्यवस्थित किया जा सकता है। इसे लेकर मैं पहले चिंतित नहीं था लेकिन अब हूँ। इसके लिए मैं अपने विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रकार का शब्दकोश विकसित कर रहा हूँ। इसके साथ अपने छात्रों को अलग से समय देकर विषय ज्ञान के साथ अंग्रेज़ी भाषा सीखने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ। प्रशासन इस बात को मान नहीं रहा है। समाजशास्त्र या अन्य किसी समाज विज्ञान के छात्र/छात्रा के पास इतना वक्त नहीं है कि वह इंग्लिश सीखने के लिये अलग से क्लास करें। उसे विषय के साथ–साथ अंग्रेज़ी सीखने के लिये ही प्रेरित करना होगा, मैं इस चीज के लिए प्रयत्नशील हूँ।

orZeku le; e lekt'kkL= dk tk ikB;Øe i<k;k tk jgk g] mll D;k vki lrq"V g l ;k mle cnyko gkuk pkfg, l

वर्तमान में प्रचलित पाठ्यक्रम काफी पुराना है, जिस पाठ्यक्रम को मैं पढ़ा रहा हूँ उसका नाम है 'सामाजिक विज्ञान का पद्धतिशास्त्र। मुझे यह पाठ्यक्रम पढ़ाते हुए पाँच वर्ष हो गए हैं। यह पाठ्यक्रम काफी पहले से चला आ रहा था। इसके महत्व को देखते हुए तब से मैंने अपने पुराने मित्रों, अध्यापकों और फांउडरों से इसके बारे में चर्चा और मत्रंणा की। इसके बाद इसमें कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। मैंने इसे समसामयिक बनाने का प्रयास किया और ज्ञान की परंपरा के आलोक में भारतीयता का पुट देने का प्रयत्न किया है। सामाजिक विज्ञान पश्चिम की देन है। भारत में सामाजिक दर्शन या समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र और भूगोल शास्त्र आदि के पाठ्यक्रमों पर उपनिवेशवाद, यूरोपीय तथा अमरीकी छाप है। भारतीयता में भी उच्चवर्णीय मूल्य, अवधारणाएं, संरचनाएँ ही पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं अर्थात् भारतीय समाजशास्त्र को समझने हेतु पाश्चात्य एवं अमरीकी दृष्टिकोण को झाड़–फूँक कर नहीं परन्तु उनको पूर्ण रूप से बदलना होगा। पाश्चात्य अवधारणाओं एवं सिद्धांतों से भारतीय यथार्थ को नहीं समझा जा सकता, ऐसी अवधारणाओं एवं सिद्धांतों में वस्तुनिष्ठता का नितान्त अभाव है, क्योंकि पाश्चात्य अवधारणाएं एवं सिद्धांत वहाँ के श्वेत अभिजात्य वर्गों द्वारा विकसित किये गये थे, जिन्होंने अपने समाज के मूलनिवासियों, ऐफ्रो, अमेरिकन, किसानों, सर्वहारों एवं विश्व के अनेक राष्ट्र के लोगों का शोषण किया था। इन अमानवीय व्यवहारों को छिपाने के लिये ही उन्होंने अनेक वस्तुनिष्ठता रहित सिद्धांत तथा अवधारणाओं को विश्व

स्तर पर प्रतिपादित किया। हमें इनको अपनाने से पहले इन प्रवृत्तियों को रेखांकित कर हटाना चाहिये। परन्तु भारत के समाजशास्त्रियों ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि यहाँ वे समाजशास्त्री भी अभिजात वर्ण के थे। उन्होंने इन सभी अवधारणाओं तथा सिद्धांतों को ज़्यों का त्यों आयातित कर लिया। जैसे समाजशास्त्र में दो सिद्धांत बड़े मशहूर हैं – एक है प्रकार्यवाद (Functionalism) तथा दूसरा है मार्क्सवाद (Marxism)। अगर हम प्रकार्यवाद सिद्धांत का आँकलन करें तो हम पायेंगे कि भारतीय समाजशास्त्र के पितामहों ने भारतीय समाज की ज़्यादातर संरचनाओं का आँकलन इसी सिद्धांत के माध्यम से किया। प्रकार्यवाद के सिद्धांत की यह मान्यता है कि समाज की विभिन्न शाखाओं या समाज की विभिन्न संस्थाओं की सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु सकारात्मक भूमिका होती है। अतः उन्होंने भारतीय गाँव, जाति व्यवस्था एवं परिवार के अनेक भागों को केवल सकारात्मक योगदान करते हुए देखा और इसलिए उपरोक्त संस्थाओं में उन्हें शोषण, उत्पीड़न, अनादर, असमानता एवं बहिष्कार आदि प्रक्रियाएँ दिखी ही नहीं। इसलिए प्रकार्यवाद भारतीय सत्यता को पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ रहा है। इसी प्रकार मार्क्सवाद ने जातीय संरचनाओं तथा मध्य वर्णीय समूह की सत्यता से मुँह मोड़ कर वर्गीय अवधारणाओं के आधार पर सर्वहारा एवं पूँजीपति समूहों को ही कारक माना। एक बार फिर यह समझ आंशिक थी। अतः समाजशास्त्रीय पाठ्यक्रम को समसामयिक बनाने हेतु हमें ऐसे दृष्टिकोण को अपनाना होगा जो अभिजात वर्ग के सरोकारों की पोल खोल कर जनसामान्य के सरोकारों से सुसज्जित हो। ये तो रही जनरल बात इस पर आगे मैं कुछ नहीं कहूँगा। परन्तु अभी मैं आता हूँ स्पेशिफिक पर। विज्ञान पश्चिम की देन है। वैज्ञानिक पद्धति से समाजविज्ञान का पाठ्यक्रम पश्चिम से आया है। इस आधार पर पश्चिम की सामग्री, सिद्धांत और अवधारणाओं को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने का प्रयास किया जाता है। मेरे सामने चुनौती यह थी कि छात्रों को पश्चिमी सिद्धांत, अवधारणाएं और शोध पढ़ाकर छोड़ दूँ या उसके समकक्ष छात्रों को भारत में जन्मी कुछ अवधारणाओं और सिद्धांतों को भी पढ़ाऊँ। यदि ऐसा नहीं पढ़ा सकता हूँ तो इसके लिए किस तथ्य और सिद्धांत को परिष्कृत करने की आवश्यकता है ? ऐसा सोचकर क्या छोड़ना है, क्या उसमें डालना है। इन समस्त तथ्यों पर विचारते हुए, मैंने भारतीय परिप्रेक्ष्य में कुछ तथ्यों को डालकर एक नवीन संकल्पना को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। इसमें समाज की उत्पत्ति, उसका विकास, उसकी प्रकृति, उसके सिद्धांत और अवधारणाओं द्वारा आकलन करने के बाद पाठ्यक्रम को समसामयिक बनाने की कोशिश की है। इसके माध्यम से भारतीय समाज पर प्रश्न उठाए जा सकते हैं तथा इसके माध्यम से इसकी प्रकृति या सामाजिक परिवर्तन को और गहराई से समझा जा सकता है।

lekt'kkL=h; nf"Vdks.k ls ikB;Øe esa D;k gksuk pkfg, l

वह समावेशी नहीं है। इसकी पद्धति शास्त्र एकांगी है। इसके निर्माता लोग विशिष्ट वर्ग या वर्ण से आते हैं। इसकी सामग्री विशिष्ट वर्गीय और विशिष्ट वर्णीय है। यह सामग्री लैंगिक, जातिय, भूगोलिक और राजनीतिक आधार पर एकांगी है। समाजविज्ञान के पाठ्यक्रम को एकांगी बनाने के लिए नगरीय, पुरुषवादी वर्चस्व, उच्चवर्णीय, भौगोलिक क्षेत्रों आदि के आधार पर अनेक प्रकार के शोध किये गये हैं। अब तक जो भी पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है, वह एकांगी है। उसमें हिंदू सामाजिक संरचना, हिंदू मूल्य, हिंदू तीज–त्यौहार आदि ही केन्द्र में स्थापित हैं। हम हिंदूइज्म के द्वारा सीधे ब्राह्मणवाद पर आ जाते हैं। मतलब यह है कि सीधे तौर पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हिंदूइज्म पढ़ाते हैं। बाकी के सम्प्रदाय हाशिये पर चले जाते हैं। केन्द्र में तीन चीजें रहती हैं – 1. वर्ण व्यवस्था, 2. संयुक्त परिवार की व्यवस्था 3. ग्रामीण व्यवस्था। इस आधार पर हम भारतीय समाज को समझने का प्रयास करते हैं। पाठ्यक्रम के अन्दर दूसरे समाज जैसे कि आदिवासी, (जिसके भीतर 400 जनजातियाँ शामिल हैं), अल्पसंख्यक समाज (जिसके अंदर सात धर्म हैं – सिक्ख, क्रिश्चन, बुद्ध, जैन, पारसी, मुस्लिम और बहायी धर्म आते हैं) आदि सभी समाजशास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र से आज भी बाहर हैं। धर्म से हमारी संरचना प्रभावित होती है। स्त्रियों की स्थिति धर्म और समाज में क्या है ? इन्हें पाठ्यक्रम में कितना स्थान दिया गया है। इन समस्त तथ्यों पर विचार की आवश्यकता है। यह पाठ्यक्रम पुरुष वर्चस्वतावादी पाठ्यक्रम है, जो भारत वर्ष के आधारभूत मूल्यों की परेशानी का कारण है। यहां का समाज भाग्यवादी समाज है। यह यहां की दिक्कत है। एक ने मुक्ति के लिए आंदोलन चलाया तो इसके बाद वह व्यक्ति सर्वोपरि हो जाता है और बाकी चीजें गौण हो जाती हैं। भारतीय समाज सामूहिक बदलाव में कम और व्यक्तित्ववादी बदलाव में ज़्यादा रुचि लेता है। यह भक्तिवाद, भाग्यवाद है। धर्म, कर्म एवं पुर्नजन्म जैसे मूल्य हिंदू धर्म के स्तंभ हैं। परन्तु आज भी इन कुरीतियों से कैसे निपटा जाए इस पर समाजशास्त्रीय शोध का सिद्धांत प्रतिपादित किया जाना समाजशास्त्रीय पाठ्यक्रम में अभी शेष है। पाठ्यक्रम में वस्तुनिष्ठ शोध का सिद्धांत एवं अवधारणाओं में भारतीय दृष्टिकोण को समायोजित करने में आज एक और कठिनाई सामने आई है। यह है कि 21वीं सदी में भूंमडलीकरण के दौर में पाश्चात्य देशों में रहने वाले अप्रवासी भारतीय समय–समय पर भारत आते हैं और अपने साथ वहां के सिद्धांत और अवधारणाओं को भी साथ लाते हैं। इसके बाद इन सिद्धांतों और अवधारणाओं के आधार पर भारत की किसी समस्या पर शोध कर भारत में छोड़ कर वापस चले जाते हैं और हम भारतीय इन सिद्धांतों और अवधारणाओं को भारतीय समझकर अपने परिवेश में इस प्रयोग का अनुकरण करने लगते हैं, जिसका नकारात्मक

प्रभाव हमारी सामाजिक संरचना और समाज पर पड़ता है। इन जटिलताओं तथा अप्रवासी भारतीयों के शोध की वर्चस्वता को समझने के लिए समाज विज्ञान के पाठ्यक्रम में इन चीजों पर भी शोध की ज़रूरत है।

lekt foKku dk ikB;Øe dk lk gkuk pkfg, l

पाठ्यक्रम मे सामाजिक सरोकार होने चाहिएं। हमारे निकटतम जो मूल्य हैं, जो निकटतम कठिनाई, परेशानी तथा निकटतम सामाजिक सरोकार हैं उनका समावेश पाठ्यक्रम में होना चाहिए। पाठ्यक्रम में इनका आकलन स्वानुभूति के आधार पर किया जाना चाहिए। इसकी माँग लगातार उठ रही है। पाठ्यक्रम में इसकी कमी रही है। इसकी कमी की वजह से समाजशास्त्र समसामयिक, समावेशी एवं वस्तुनिष्ठ नहीं बन पाया है। समाज की जो पीड़ा है, उसका जो दर्द है, उसका निदान इस पाठ्यक्रम में नहीं है। यह पाठ्यक्रम समाधान के रूप में कोई औषधी नहीं दे पा रहा है इसलिए भारत में जिस समाज विज्ञान की आवश्यकता है वह इस पाठ्यक्रम में नज़र नहीं आता है। हमें समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम को उसमें दिए गए ज्ञान को इतना मौलिक बना देना चाहिए कि समाज में फैली सामाजिक बीमारियों का इलाज सम्भव हो सके। साथ ही साथ पाठ्यक्रम समाजशास्त्रीय दृष्टि से सब बीमारियों के इलाज हेतु प्रभावी हो, चाहे वह नारी शोषण, अधंविश्वास, दहेज प्रथा, शिक्षा के प्रति अशिक्षा हो आदि आदि। जब तक हम सामाजिक बीमारियों का इलाज नहीं कर पायेंगे तब तक समाजविज्ञान की पद्धतियों, अवधारणाओं एवं पाठ्यक्रमों का कोई औचित्य नहीं है। इसके लिए जन उपयोगी और समाज उपयोगी समाजविज्ञान निर्मित करने की आवश्यकता है। हमें समाजशास्त्र विषय में ऐसा पाठ्यक्रम, ऐसे सिद्धांत एवं ऐसी अवधारणाओं को विकसित करना चाहिये, जिसे पढ़कर विद्यार्थी सामाजिक बीमारी दूर करने के लिए जगह–जगह समाजशास्त्र के क्लीनिक एवं अस्पताल खोल सकें। तभी समाजशास्त्र की स्वीकार्यता समाज एवं बौद्धिक जगत में स्थापित हो पायेगी।

lektfoKku dk fdl rjg l ekfyd cuk;k tk ldrk g l

मुझे लगता है कि समाजशास्त्र को मौलिक बनाने से इसकी अपनी भाषा का होना आवश्यक है। समाजशास्त्र का पाठ्यक्रम स्थानीय भाषा में विकसित किया जाना इसकी मौलिकता के लिए आवश्यक है, क्योंकि भाषा का अपना ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए 'जूठन' को अंग्रेज़ी भाषा में 'Left Over' से अभिव्यक्त किया जा सकता है। परन्तु 'जूठन' की संवेदना इस अंग्रेज़ी शब्द के माध्यम से व्यक्त नहीं होती है। इसे एक अन्य उदाहरण से भी समझा जा सकता है कि 'नाई' जाति का अंग्रेज़ी अनुवाद 'Barber' होता है। हिंदी में 'नाई' शब्द के अंदर अनंत व्याख्याएं छिपी हैं। इसका अनुवाद 'नाई' शब्द के अंदर छिपी संवेदना को अभिव्यक्त नहीं करता है। भारत में 'नाई' केवल बाल, नाख़ून काटने का काम नहीं करता है। वह रिश्तों की बातचीत लेकर भी जाता है। वह रिश्तों का निर्माता होता है। उसकी दाम्पत्य रिश्ते बनाने और बिगाड़ने में अहम भूमिका होती है। जब ब्राह्मण उपलब्ध नहीं होता है, तब वह शादी–विवाह भी करवाता है। नाई शब्द का अनुवाद मूल भाव और अंश को अनुवाद में अभिव्यक्त नहीं करता है। समाजशास्त्र को पूर्ण मौलिक बनाने के लिए हिंदी का उपयोग होना चाहिए। यह भाषा हमें पूर्ण ज्ञान का दर्जा दिलाएगी। मैंने एक सम्मेलन में 'आरोही मोबिलाजेशन' (Mobilization) शब्द का प्रयोग किया। यह हमारा शब्द है। इसी तरह से समाजशास्त्र में शाब्दिक आदान–प्रदान करना होगा। तभी भारतीय और पश्चिमी अवधारणाओं का आदान–प्रदान हो पाएगा। हमें समाजशास्त्र की भाषा को हर दृष्टि से सशक्त बनाना है। तभी हम बुराईयों के प्रति संघर्ष कर पाएँगे।

D;k vkt dk lekt'kkL= dk ikB;Øe Nk=k d fy, m)kjd g l D;k mudk o.k foghu] tkfr foghu] ikUr foghu Hkkjrh; ukxfjd cukus e l{ke g l D;k lekt 'kkL=h; ikB;Øe lerk] LOkrU=rk] cU/kRo ,o lkekftd U;k; d vk/kkj ij jk"V fuekZ.k dju e l{ke g l

नहीं, कतई नहीं। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिये कि कहा जाता है कि शिक्षा एक ऐसा उपकरण है जिससे हम अपनी बहुत सारी कठिनाईयाँ दूर कर सकते हैं। कहा जाता है कि एक शिक्षित व्यक्ति घर बैठे–बैठे दूसरे समाजों की वास्तविकता से रुबरु हो सकता है। वह उसकी अच्छाई और बुराईयों को समझ कर उनसे बहुत कुछ सीख सकता है। संक्षेप में शिक्षा इस तरह उद्धारक की भूमिका निभाती है। परन्तु ऐसी शिक्षा का पाठ्यक्रम यथार्थ एवं वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित होता है। वह समावेशी एवं समग्र–वर्ग की चेतना लिये होता है। क्या भारतीय समाजशास्त्र का पाठ्यक्रम ऐसा है। उत्तर नकारात्मक है। अतः जब पाठ्यक्रम यथार्थ, वस्तुनिष्ठ, समावेशी, मौलिक नहीं है तो वह उद्धारक कैसे हो सकता है। ऐसी स्थिति में समाज शास्त्र के विद्यार्थियों का उद्धार होना ना मुमकिन है, क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है कि भारतीय समाज शास्त्र का पाठ्यक्रम पाश्चात्य उन्मुखी है, उच्च वर्णीय है, पुरुष एवं नगरीय प्रधान है, हिंदू ब्राह्मण प्रधान मूल्यों पर आधारित है इसलिये यह वर्ण विहीन, जाति विहीन, वर्ग एवं प्रान्त विहीन धर्मनिरपेक्ष एवं प्रगतिशील नागरिक बनाने में सक्षम नहीं है। इसी कड़ी में पुरुष, उच्च वर्गीय, उच्च जातीय, नगरीय आदि मूल्यों की प्रधानता की वजह से यह पाठ्यक्रम समता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व एवं सामाजिक न्याय के आधार पर राष्ट्रनिर्माण में भी अपना पूर्ण योगदान नहीं दे सकता।

foKku ifjn';

c`ºek.Mh; fdj.kksa dk v/;;u }kjk i;kZoj.k 'kks/k

सौमित्र मुखर्जी*

पृथ्वी के वातावरण पर बाह्य अंतरिक्ष के प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है। सूर्य एवं अन्य तारों में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। यद्यपि धरती से काफी दूरी पर यह स्थित है, लेकिन भूगर्भ–एवं इनके ऊपरी वायुमंडल में होने वाले परिवर्तनों के पूर्वानुमान में सुदूर संवेदन द्वारा महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किया जा रहा है। स्पेस एनवायरमेंट व्युविंग एण्ड एनालिसिस नेटवर्क (सेवान) द्वारा पूरी दुनिया के 14 देशों में प्राकृतिक आपदाओं की पूर्व चेतावनी व्यवस्था को विकसित करने की योजना का प्रारूप तैयार हो चुका है। इस नेटवर्क की रूपरेखा की नींव सन् 2002 में कैलिफोर्निया (अमेरिका) में एक संगोष्ठी (TIGER) थर्मोस्फेरिक -आयनोस्फेरिक - एटमोस्फेरिक- जियोस्फेरिक रिसर्च का वैज्ञानिक अनुमोदन मिला था। इस लेख के लेखक इस दिशा में सन् 1998 से नासा के सहयोग से अपनी वैज्ञानिक अभिधारणा के प्रारूप तैयार कर चुके थे, जिसका अनुमोदन सन् 2001 में जियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया ने दे दिया था। अपने 150 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में इसे भारत सरकार ने प्रकाशित भी किया था। इस अभिधारणा को प्रारूप देने में भारतवर्ष के जियोलॉजिस्टों के अलावा अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने सन् 2007 में जर्मनी स्थित वाद हॉनेफ क्षेत्र में आर्थिक मदद देने के लिये नासा, मैक्स प्लांक तथा विश्व के अन्य प्रमुख वैज्ञानिकों ने यूनाइटेड नेशन्स को प्रशस्ति पत्र का प्रारूप तैयार किया। यूनाइटेड नेशन्स पीसफुल रिसर्च ऑन आउटर स्पेस के प्रमुख हान्स ह्यूवोल्ट की संस्तुति पर नासा एवं एशियन आफिस ऑन एयर एण्ड स्पेस रिसर्च ने भारतवर्ष के अग्रणी विश्वविद्यालय जवाहरलाल नहेरू विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान संस्थान की जियोलॉजी एवं रिमोट सेन्सिंग (सुदूर संवेदन) प्रयोगशाला को एक प्रयोग के प्रमुख के रूप में मान्यता दी। इस प्रयोग में विश्व के कुल 14 देशों में कास्मिक रे डिटेक्टर के डाटा का प्रयोग जियोलॉजी एवं पर्यावरण के अनसुलझे तथ्यों के समाधान के लिए किया जा रहा है।

जेएनयू के इस उपकरण द्वारा दिल्ली में अंतरिक्ष पर्यावरण देखने और विश्लेषण नेटवर्क में सूर्य के वातावरण और धरती के आसपास के क्षेत्र में कण त्वरण के मौलिक शोध की दिशा में एक नए पर्याय की शुरुआत हो चुकी है। कण डिक्टेटरों के नए प्रकार के खोज के लिये इस्तेमाल एक शक्तिशाली स्वीकृत उपकरण मे तब्दील हो रही है। इस उपकरण को सन् 2010 में आर्मेनिया के वैज्ञानिकों के सहयोग से तैयार किया गया था।

माध्यमिक ब्रह्माण्डीय किरणों के अधिकांश प्रजातियों के अपशिष्ट का पर्यावरणीय बदलाव में महत्त्वपूर्ण योगदान पर प्रस्तुत हाइपोथिसिस को इस लेख के लेखक ने नासा के सहयोग से पेटेंट के तौर पर विकसित किया।

अर्मेनिया के आरगेटस में भी इसी प्रकार के कास्मिक रे डिटेक्टर को तैनात किया गया है। भूमि आधारित कण डिटेक्टरों द्वारा आकाशगंगा में त्वरित प्रोटॉन और क्षीण आयनों की वजह से वातावरण में और धरती के अन्दर होने वाले परिवर्तन की भविष्यवाणी करना सम्भव होगा। सूर्य व आकाशगंगा से आने वाले कणों के त्वरण परिवर्तन से भू–चुम्बकीय और विकिरण तूफानों का विश्वसनीय अनुमान लगाने से न केवल धरती एवं उसके वातावरण को समझा जा सकता है वरन जी. पी.एस. (ग्लोबल पोजिशन सिस्टम) के कार्यप्रारूप में परिवर्तन द्वारा उपग्रहों एवं विमान चालक तथा यात्रियों को विकिरण के स्तरों से आगाह किया जा सकता है। जेएनयू स्थित ब्रह्माण्डीय किरण आकलन न्यूट्रान काउंटिग रेट के आधार पर सौर एवं दूरस्थ तारों से आने वाले कॉस्मिक रे का आकलन कर रही है।

ब्रह्माण्डीय किरणों के कण तकरीबन प्रकाश की गति वाले नाभिकीय केन्द्र वाले अणु होते हैं। सूर्य के पृथ्वी के वातावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की भू–चुम्बकीय क्षेत्र और ब्रह्माण्डीय किरणों की आयनिक क्षमता के आधार पर नियंत्रित होने का पता चला है। पृथ्वी को निर्देशित परिमंडल व्यापक निष्कासन व सौर भभकों और इनके पृथ्वी के तापमंडल, आयनमंडल और वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जा रहा है। सौर उथल पुथल के दौरान इलेक्ट्रानों का पुंज या प्लाज़्मा पृथ्वी की ओर तेजी से धकेला जाता है। यह इलैक्ट्रान पुंज उच्च चालक होता है और एक विद्युत क्षेत्र को पैदा करता है, जिसे यह प्राकृतिक प्लाज्मामंडल और आयनमंडल में संचारित कर देता है। परिवर्तित विद्युत क्षेत्र की यह बारीक परत फिर से पृथ्वी के आयनमंडल और वायुमंडल को प्रभावित

लेखक पर्यावरण विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रोफेसर हैं।

करती है। इलैक्ट्रॉनों के इस पुंज का विद्युत धारा की सहायता से आने की वजह से एक चुम्बकीय खलबली पैदा होती है।

तारा फूटने की घटना एक मैग्नेटार (Magnetar) नाम से जाने वाले ख़ास न्यूट्रान स्टार द्वारा घटित होती है। ये तेजी से चक्कर खाते सघन तारकीय पिंड एक शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण करती है, जो विस्फोट के लिए प्रेरित करते हैं। इन विस्फोटों को हम तारा फूटने की घटना कहते हैं। तारा फूटने की घटना से सूर्य–पृथ्वी के वातावरण में ग्रहीय सूचक (Planetary indices-kp) और इलैक्ट्रान प्रवाह (Electornflow) की स्थितियों में परिवर्तन पैदा होते हैं।

अनियमित इलैक्ट्रॉन प्रवाह आयनमंडलीय धाराओं में उतार–चढ़ाव की स्थिति पैदा कर देता है। आयनमंडल धाराएं तारा–सूर्य–पृथ्वी वातावरण में पैदा होने वाले भू–चुम्बकीय बवंडर की वजह से उत्पन्न होती है। आयनमंडलीय धाराओं में होने वाले परिवर्तन का सम्बन्ध सीधे वातावरण के तापमान से होता है। भूतकाल में वातावरण और भूमंडल में होने वाले परिवर्तनों से पहले धरती के विभिन्न हिस्सों में ओलावृष्टि व बर्फीले तूफानों और सौर भौमकीय परिवर्तनों के बीच सम्बन्ध देखा गया है, स्थल मंडल में होने वाले परिवर्तनों जिनमें भूकम्प, सुनामी, सूखा, भूमिगत जल का विन्यास विघटन व अन्य पर्यावरणीय असन्तुलन शामिल हैं। इन उतार–चढ़ाव से पहले वातावरण के तापमान और समुद्र तल के तापमान में बढ़ोतरी दर्ज की गई है। तापमान का यह परिवर्तन पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में अलग–अलग होता है, क्योंकि सौर भभकों और आकाशगंगा के पार से आने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों में विविधता होती है। यह विविधता हल्के बादलों के वैश्विक औसत और आकाशगंगा की ब्रह्माण्डीय किरणों के प्रवाह के बीच आपसी सम्बन्ध पर निर्भर करती है। इन कॉस्मिक किरणों या ब्रह्माण्डीय किरणों के पृथ्वी के वातावरण में होने वाले प्रभाव को देखकर कवि बिहारी का एक दोहा याद आता है –

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक् के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।

कॉस्मिक किरणों के अध्ययन से शायद हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि कोई कितना भी छोटा क्यों न हो यदि उसमें पर्याप्त ऊर्जा या आत्मबल हो तो प्रत्येक बाधा, परेशानी को झेलता हुआ वह न सिर्फ़ अपनी मंज़िल तक पहुँचता है वरन् अपने सम्पर्क में आने वाले हर पदार्थ या परिस्थिति में एक बदलाव भी लाने में सक्षम हो सकता है।

rkieku o inkFk&foKku esa fuEu rki dk egÙo

अशोक कुमार रस्तोगी*

पदार्थ–विज्ञान का सम्बन्ध उनके गुणों में व्याप्त अपार विभिन्नता को समझने से है। इस पर शोध–कार्य करने के लिए एक सुनियोजित प्रक्रिया द्वारा वैज्ञानिक विशिष्ट रसायनिक संरचना के पदार्थों का संश्लेषण करते हैं और प्रयोगों द्वारा उनके भौतिक गुणों और आणविक–संरचना के सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं। वैज्ञानिक समझ का अभिप्राय इन्हीं सम्बन्धों को आणविक–जगत में व्याप्त सर्वव्यापी और आधारभूत सिद्धांतों से समझने के प्रयास से है। इसी वैज्ञानिक समझ ने मानव को तकनीकी प्रगति के लिए उपयोगी पदार्थों के संश्लेषण की अभूतपूर्व क्षमता प्रदान की है।

यह सर्वविदित है ठोस पदार्थ के सामान्य गुण जैसे घनत्व, आकार, रंग, कठोरता, पारदर्शिता और ऊष्मा चालकता इत्यादि पर ताप परिवर्तन का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखता। इसलिए यह पूछना तर्कसंगत है कि आखिर पदार्थ के गुणों को निम्न तापमान पर मापने का क्या महत्व है। इसके उत्तर में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि पदार्थ–विज्ञान में अभूतपूर्व प्रगति 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वैज्ञानिक–इंजीनियरों द्वारा निम्न ताप प्रजनन की तकनीकी के विकास और उनके शोध कार्य में प्रयोग करने से ही संभवन हो सकी है।

निम्न ताप पर प्रयोगों द्वारा विशेष तौर से धातुओं व मिश्रधातुओं के इलेक्ट्रानिक गुणों के मापन से वैज्ञानिकों को न्यूटोनियन–मेकेनिक की असफलता का अहसास कराया और इनके अध्ययन से वे आणविक जगत के सिद्धान्तों को ठोस पदार्थों में प्रयोग करने में सफल हो सके। अंततः वे उनके गुणों में व्याप्त अपार विभिन्नता को उजागर कर सके। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिकों ने निम्न ताप पर प्रयोगों के दौरान अचंभित करने वाले अभूतपूर्व गुणों जैसे हीलियम द्रव में घर्षण विहीन आणविक तरलता (सुपरफ्लूडिटी) और घर्षण विहीन इलैक्ट्रॉनिक चालकता (सुपर कन्डक्टिविटी) की खोज की। इन खोजों ने परमाणु जगत में व्याप्त कण–तरंग के द्वैतवाद को उनके तन्तु विज्ञान में नाटकीय ढंग से उजागर किया।

rkieku D;k g\ I

तापमान का सम्बन्ध ऊर्जा (ऊष्मा) के प्रवाह से है। तापमान वस्तुओं के ताप का स्तर है जिसके अन्तर के फलस्वरूप ऊष्मा का एक वस्तु से अन्य वस्तुओं के बीच आदान–प्रदान होता है। घरेलू प्रयोग में तापमान हमें गर्म या ठण्डे होने का अहसास कराता है – जब हम ऊर्जा को अपने से कम या ज्यादा तापमान में खो या पा रहे होते हैं। ऊर्जा (ऊष्मा) का प्रवाह अधिक ताप स्तर से कम ताप स्तर की ओर होता है, जब तक कि दोनों ताप स्तर बराबर न हो जाएँ। इस प्रकार ऊष्मा का प्रवाह पानी के बहाव की तरह है जिसके फलस्वरूप तापमान स्वतः रूप से एक समान स्तर पाने की चेष्टा करता है और प्रवाह में सन्तुलन स्थापित होता है। यहाँ स्वतः रूप का मतलब ऐसी परिस्थिति से है जब किसी ऊर्जा का आन्तरिक स्रोत या हौदी मौजूद न हो और ऊर्जा प्रवाह में बाधा न हो।

Å"ek ¼ghV½ ¼æ0; ;k Åtk½ I

उपर्युक्त में हमने ऊष्मा व ऊर्जा का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ऊष्मा को ऊर्जा से भिन्न, एक "अदृश्य और अनश्वर द्रव्य" (कलोरिक पदार्थ) के स्वरूप में समझा जाता था जो हर पदार्थों में रहता था। यह ताप भिन्नता के बल के कारण पदार्थों के बीच प्रवाहित होता है, जिससे एक संतुलन स्थापित हो सके। ऐसा मानना था कि पदार्थों द्वारा कलोरिक पदार्थ के अवशोषण या निष्कासन से ही उनका तापमान बढ़ता या घटता है।

आधुनिक समझ से ऊष्मा ऊर्जा के समरूप हैं। विभिन्न प्रयोगों के फलस्वरूप जूल्स, क्लासियस और कारनो इत्यादि वैज्ञानिकों ने "ऊर्जा के संरक्षण का सिद्धान्त" प्रतिपादित किया और 1850 तक यह दिखा दिया गया कि ऊष्मा (हीट) कोई अलग द्रव्य नहीं है बल्कि यह यांत्रिक और विकिरण ऊर्जा ही है। ऊष्मा और ऊर्जा की समरूपता का सिद्धान्त मूलतया निम्नलिखित अवलोकन पर आधारित है।

Å"ek vkSj Åtk dh le:irkA

आदिकाल से मानव घर्षण द्वारा आग पैदा करने से परिचित था। इसमें जलाऊ लकड़ी में घर्षण द्वारा ऊष्मा का अवशोषण होता है; फलस्वरूप तापवर्धन और अन्ततः रसायनिक प्रक्रिया से आग पैदा होती है। हमारे पूर्वज इस तापवर्धन को केलोरिक द्रव्य के प्रवाह के रूप में समझते थे। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह पाया गया कि यांत्रिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न घर्षण की मदद से ऊष्मा का प्रवाह दो वस्तुओं के बीच असीमकाल तक बनाए रखा जा सकता है। इसके विपरीत, कलोरिक द्रव्य का प्रवाह एक अन्तराल बाद वस्तु विशेष में समाप्त हो जाना चाहिए। इसके अलावा ऊर्जा मापन से यह भी पाया गया कि घर्षण द्वारा उत्पन्न ऊष्मा, व्यय

* *लेखक भौतिक विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रोफेसर हैं।*

की गयी यांत्रिक ऊर्जा के बराबर है इस प्रकार यहाँ भी "ऊर्जा का संरक्षण का सिद्धान्त" लागू होता है।

उपर्युक्त में हमने देखा कि, ऊष्मा और ऊर्जा को अलग करके देखना मिथ्या है। आज भी हम ऊष्मा शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका कारण ऐतिहासिक है। ऊष्मा (हीट) का प्रयोग विज्ञान मे ऊर्जा के लिए उस विशेष परिस्थिति में होता है – जब ऊर्जा का आदान–प्रदान तापमान स्तर की विभिन्नता के कारण होता है। ऊष्मा वस्तुओं में रहने वाला कोई केलोरिक द्रव्य नहीं है बल्कि ऊष्मा के अवशोषण फलस्वरूप वस्तु–विशेष के संघटकों की गतिज या गर्भित ऊर्जा में परिवर्तन होता है।

rkiekiu ¼oKkfud ije'kU;

तापमान का व्यवहारिक मापन डिग्री सेंटीग्रेट (^0C) पैमाने पर होता है। डिग्री सेंटीग्रेट पैमाने की ईकाई पानी के जमने 0 ^0C (शून्य डिग्री सेंटीग्रेट) और उसके उबलने के तापमान (100 ^0C) के अन्तर को 100 बराबर हिस्सों में बाँट कर बनायी गयी है। यह मापन 1743 में स्वीडन के वैज्ञानिक "आन्द्रे सेलसियस" ने प्रतिपादित किया था। इस पैमाने पर स्वस्थ मनुष्य का ताप 37 ^0C, पृथ्वी की सतह पर न्यूनतम ताप अंटाकर्टिक में शून्य से नीचे 93 ^0C और अधिकतम ईरान के लूट रेगिस्तान में 70 ^0C पाया गया है।

डिग्री सेंटीग्रेट का पैमाना व्यावहारिक व सुविधाजनक है परन्तु पानी के जमने के तापमान को शून्य और उससे कम ताप को ऋणात्मक ताप मानने का कोई वैज्ञानिक औचित्य नहीं है। ऊष्मा विज्ञान के अनुसार तापमान का एक सार्वभौमिक परमशून्य होता है जो किसी पदार्थ विशेष गुणों पर आधारित नहीं है। इस परमशून्य पर ऊष्मा का संचार भी रुक जाता है। इन कारणों से तापमान का ऋणात्मक होना अस्वीकार है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा इस परमशून्य का आकलन किया जा सकता है। परमशून्य डिग्री सेंटीग्रेट पैमाने पर उसके शून्य से 273.15 ^0C कम है। वैज्ञानिक पदार्थों का ताप इसी शून्य से ऊपर मापते हैं।

परमशून्य पर आधारित तापमान के पैमाने को केलविन पैमाने के नाम से जाना जाता है। यह नाम आइरिश–स्काटिश वैज्ञानिक विलियम थामसन (लार्ड केलविन) (1829–1907) के सम्मान में है। इस पैमाने पर तापमान की इकाई डिग्री सेंटीग्रेट पैमाने के बराबर है। इस प्रकार केलविन स्केल (K) पर तापमान ^0C स्केल पर मापे तापमान में 273.15 जोड़ कर पाया जा सकता है। इस स्केल पर पृथ्वी की सतह का न्यूनतम ताप 273.15–93.2 ^0C यानी 179.98 K और अधिकतम 273.15 + 70 ^0C यानी 443.15K है।

inkFk&Hkkfrdh; vkj vk.kfod vUrjfØ;k,

आदिकाल से मानव प्रकृति में उपलब्ध और अन्वेषित पदार्थों जैसे लकड़ी, पत्थर, चीनी व चुनाई मिट्टी, क्ले, धातुओं व मिश्र धातुओं का उनके विशिष्ट गुणों के आधार पर दैनिक जीवन–चर्या में उपयोग करता रहा है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार ठोस पदार्थों के मूल भौतिक गुण हैं – घनत्व, तरलता, लचीलापन, कठोरता, उनमें यांत्रिक तरंगों का प्रवाह, बिजली व ऊष्मा के प्रवाह की क्षमता, पारदर्शिता, रंग, उन पर विद्युत व चुम्बकीय बल का प्रभाव, बाहरी ऊर्जा सोखने की क्षमता इत्यादि। वैज्ञानिक इन्हीं मूल गुणों को विभिन्न प्रयोगों द्वारा पदार्थ विशेष में अध्ययन करते हैं। पदार्थों में अपार विभिन्नता – जैसे एक ओर हीरे–मणि की कठोरता, पारदर्शिता व विद्युत–रोधिकता और दूसरी ओर स्वर्ण की लचीलता, अपार दर्शिता व विद्युत–ऊष्मा चालकता से सभी परिचित हैं। वैज्ञानिक इन विभिन्नताओं को पदार्थों की संरचना व उनके संगठित अणुओं के बीच अन्तरक्रियाओं के फलस्वरूप मानते हैं।

आणविक–अन्तरक्रियाएं सर्वव्यापी हैं और ठोस पदार्थों से परे परमाणु जगत में व्याप्त आधारभूत सिद्धान्तों का अनुपालन करती हैं। ठोस पदार्थों के गुणों की अपार विभिन्नताओं को परमाणु जगत के चन्द आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा समझ पाना वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। पिछली शताब्दी में वैज्ञानिकों ने आणविक– अन्तःक्रियाओं को ठोस पदार्थों की जटिल परिस्थितियों में समझ कर, उनके भौतिक गुणों की संतोषजनक व्याख्या करने में अभूतपूर्व सफलता पायी है। इसी समझ ने मानव को अतिविशिष्ट गुणों वाले पदार्थों के संश्लेषण की क्षमता दी है। इन पदार्थों के उपयोग से ही मानव ने जल, जमीन व वायु में विचरण करने, परिवहन, संचार, स्वास्थ और निर्माण–तकनीकी में अभूतपूर्व प्रगति की है।

inkFkk e foYykjh lfEerk vkj rkio/ku d çHkko

यह स्पष्ट है कि ठोस पदार्थों में अणुओं की संगठित अवस्था उनके द्वारा (क) निश्चत व (ख) उच्च कोटि में व्यवस्थित स्थान ग्रहण करने की होती है। इस प्रकार अणु निम्न ऊर्जा व निम्नतम सम्भव इन्ट्रोपी की व्यवस्था ग्रहण करते हैं। ठोस पदार्थों में अणुओं की निश्चलता उन्हें सुदृढ़ता व अणुओं का व्यवस्थित संयोजन उन्हें मणिक–स्वरूप (क्रिस्टल) स्फाटीय–सुन्दरता प्रदान करते हैं। प्रकृति में स्फाटकमय गुण विल्लौर, दुर्लभ रत्न – जवाहरात से लेकर रोजमर्रा में इस्तेमाल की चीजें जैसे रवेदार मिश्री या नमक वगैरह में देखी जा सकती है। इन स्फटकों के वाह्‍य स्वरूप में पायी जाने वाली सममितता (सिमेट्री) उनके घटक अणुओं द्वारा परस्पर सममित स्थान ग्रहण करने का द्योतक है।

यह सर्वविदित है कि तापमान का पदार्थों की भौतिक दशा व गुणों पर निर्णायक असर होता है। वैज्ञानिक तापवर्धन के असर को मूलतया निम्नलिखित आणविक प्रक्रियाओं के संदर्भ में समझते हैं।

(क) उनके अणुओं की गतिज व गर्भित ऊर्जा (काइनेटिक व पोटेन्सल ऊर्जा) में प्रसार

(ख) अणुओं की आन्तरिक उत्तेजना में वृद्धि के फलस्वरूप आपसी बन्धन में ह्रास

(ग) आणविक स्पन्दन में वृद्धि और उनमें पारस्परिक अव्यवस्थता (इन्ट्रोपी) का बढ़ना

(घ) अणुओं का आंशिक या पूर्ण आयनीकरण व इलेक्ट्रान का निष्कासन

उपयुक्त प्रतिक्रियाओं द्वारा तापवर्धन से क्रमशः ठोस पदार्थों का द्रव, गैस व अन्ततः आयनिक–द्रव्य रूपी अवस्था में परिवर्तन (फेज–ट्रान्सीशन) होता है।

inkFk & Hkkfrdh; e fuEu rkieku ij 'kk/k dk egRo

साधारण तौर से यह लगता है कि ठोस पदार्थों पर, तापमान, विशेष कर निम्न तापमान का कोई विशेष प्रभाव नहीं होना चाहिए। आखिरकार शून्य से नीचे 93 ^{0}C की ठण्ड पर भी अंटार्कटिक में निवास, परिवहन और रोजमर्रा के लिए सामान्य पदार्थों का ही बखूबी इस्तेमाल होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि तापमान के परिवर्तन द्वारा वैज्ञानिक किन गुणों में होने वाले परिवर्तन को मापते हैं और इनकी पदार्थ–भौतिकीय के लिए क्या उपयोगिता है ?

उपर्युक्त प्रश्न के संदर्भ में यह समझने की आवश्यकता है कि वैज्ञानिकों का मूल उद्देश्य विभिन्न पदार्थों के भौतिक–गुणों में पायी जाने वाली अपार विषमताओं के कारणों की समझ से है। उदाहरण स्वरूप खनिज कोयला, हीरा–पत्थर, काजल, ग्रेफाइट व इसके दूसरे संश्लेषित रूप जैसे नैनोट्यूब और बकी–बाल वगैरह सभी की रसायनिक संरचना कार्बन–अणुओं के संयोजन से होती है। परन्तु इनकी बनावट में अपार भिन्नता होती है जो इनमें कार्बन–अणुओं की व्यवस्था में भिन्नता के कारण है। इनकी बनावट का भौतिक गुणों जैसे कठोरता, पारदर्शिता, रंग और इनकी विद्युत व ऊष्मा चालकता पर निर्णायक प्रभाव होता है। बनावट की विभिन्नता के फलस्वरूप उनकी आणविक–अंतःक्रियाओं में होने वाले परिवर्तन के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिक पदार्थों के गुणों की विषमता को समझ सकने में अब समर्थ हैं।

ठोस पदार्थों के भौतिक गुणों में, जटिल आणविक – अंतःक्रियाओं की निर्णायक भूमिका है। इन अन्तरक्रियाओं के प्रभावों को उजागर करने में, वैज्ञानिकों को निम्न तापमान पर किए गए प्रयोगों द्वारा ही महान सफलता मिली है। यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि पदार्थ–भौतिकीय का विस्तार 19वीं शताबदी के उत्तरार्ध में वैज्ञानिक–इंजीनियरों द्वारा निम्न तापमान पैदा करने की तकनीकी में सफलता और बाद में उनका पदार्थ–भौतिकी के शोध कार्यों में उपयोग द्वारा ही संभव हो पाया है।

Hkkfrd x.k cuke byDVkfud 0;ogkj

सन् 1897 में सर जे.जे. टॉमसन ने इलेक्ट्रान की खोज के साथ ही अणुओं के अविभाज्य होने की अति प्राचीन परिकल्पना ध्वस्त हो गयी। अणुओं की बनावट में इलेक्ट्रान नामक परमाणु होने का ठोस पदार्थ भौतिकीय पर क्रातिकारी प्रभाव हुआ। इलेक्ट्रान, बहुत कम द्रव्यमान का ऋणात्मक आवेश वाला, एक आधारभूत व अविभाज्य कण पाया गया। इलेक्ट्रान की खोज के तुरन्त बाद ही वैज्ञानिकों द्वारा, आणविक–अंतक्रियाओं में, इसकी निर्णायक भूमिका का प्रतिपादन स्वाभाविक था। अणुओं के मध्य इलेक्ट्रान के आदान–प्रदान व विचरण के आधार पर भौतिक गुणों में विभिन्नता को समझने के लिए वैज्ञानिकों को मजबूर कर दिया।

inkFkk dh lajpuk

सरल दृष्टि से ठोस पदार्थों को हम अणुओं द्वारा बने विशिष्ट रिहायशी ढाँचे की तरह देख सकते हैं जिसमें इलेक्ट्रान निवास करते हैं। इस ढाँचे की बनावट का इलेक्ट्रान के व्यवहार – उसके अणुओं से बंधन या स्वतंत्र विचरण पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है, जिससे उनके (ठोस पदार्थ के) भौतिक गुणों को विशिष्टता प्रदान होती है (धातु व अधातुओं के संदर्भ में नीचे देखें)। ठोस माध्यम में इलेक्ट्रानिक व्यवहार को हम उन पर बाहरी बल–जैसे यांत्रिक, विद्युत या चुम्बकीय बल के उपयोग द्वारा उसकी ऊर्जा में परिवर्तन करके अध्ययन कर सकते हैं। अणुओं के मध्य इलेक्ट्रान का आदान–प्रदान व विचरण, परमाणु जगत में लागू होने वाले मूलभूत व सर्वव्यापी सिद्धान्तों द्वारा समझा जाता है। पदार्थ–भौतिकीय का मूल उद्देश्य इन्हीं अध्ययन द्वारा अणुओं के मध्य इलेक्ट्रान के आदान–प्रदान व विचरण के व्यवहार को, परमाणु जगत में लागू होने वाले मूल सर्वव्यापी सिद्धान्तों (गति विज्ञान) से समझ सकने से है।

/kkrvk dk fy, byDVku&xl ekMy

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में धातुओं के गुणों को समझने के लिए इलेक्ट्रान–गैस माडल का प्रतिपादन किया गया। इस माडल के अनुसार धातुओं में इलेक्ट्रानिक–कण गैस–पदार्थों के अणुओं की तरह स्वच्छंद विचरण करते हैं। जो उन पर लगाए गए विद्युत बल–क्षेत्र या तापमान के अन्तर के फलस्वरूप प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार धातुओं जैसे ताम्र, रजत, स्वर्ण और लौह इत्यादि में विद्युत और ऊष्मा चालकता की गुणात्मक व्याख्या ही नहीं बल्कि विद्युत और ऊष्मा चालकता की मात्रा का आकलन इलेक्ट्रान के आवेश, द्रव्यमान व तापमान के परिमाण के आधार पर किया जा सका है। इलेक्ट्रान गैस माडल की अभूतपूर्व सफलता के बावजूद इस अत्यन्त सरल माडल के ठोस पदार्थों में लागू होने पर संदेह और इसकी सफलता पर अचरज होता है। इस संदेह करने के पीछे निम्नलिखिल कारण हैं।

¼d½ dyEc vkd"k.k dk çHkko ½ इलेक्ट्रान ऋणात्मक–आवेश के कण हैं। वे उदासीन अणुओं से अलग होने पर आयोनिक अणुओं पर घनात्मक–आवेश छोड़ जाएंगे। विपरीत आवेग होने के कारण आयोनिक अणु इनको फिर से आकर्षित कर लेंगे। इन कारणों से इलेक्ट्रान के स्वतन्त्र होने व उनके स्वच्छन्द (निरंकुश) विचरण में अत्यधिक बाधा होनी चाहिए।

¼[k½ /kkrvk o v/kkrvk e vUrj ½ आणविक अन्तरक्रियाओं द्वारा एक ओर धातुओं में इलेक्ट्रान के स्वतंत्र और दूसरी ओर अधातुओं में इनके बन्धित होने

के विपरीत कारणों को समझना संभव नहीं है। यहाँ यह भी स्पष्ट नहीं है कि ठोस पदार्थों में इलेक्ट्रान के बंधन व उनके आयनीकरण में किस प्रकार की ऊर्जा की भूमिका होती है।

¼x½ fuEu rkieku dk iHkko ½ तत्कालिक समझ के अनुसार निम्न तापमान पर धातुओं में इलेक्ट्रान गैस माडल विफल हो जाना चाहिए। क्योंकि ऊर्जा के निष्कारण के फलस्वरूप गैस–अवस्था के इलेक्ट्रान भी गैस के अणुओं की तरह निश्चल होकर ठोस अवस्था में परिवर्तित होने चाहिए। इन कारणों से धातुओं की विद्युत और ऊष्मा चालकता तापमान के कम होने से घटनी चाहिए और अन्ततः निम्न तापमान पर वह अधातुओं में परिवर्तित हो जाने चाहिए। इस धारणा के बिलकुल विपरीत धातुओं की इलेक्ट्रान चालकता में बहुत वृद्धि होती है, यही नहीं बल्कि बहुत से धातुओं में निम्न तापमान पर घर्षण विहीन इलैक्ट्रानिक चालकता (सुपरकन्डक्टिविटी) की अभूतपूर्व अवस्था–परिवर्तन पायी जाती है।

byDVkfud x|.k ½ Dykfldy&xfrfoKku dh foQyrk

धातुओं में इलेक्ट्रान–गैस माडल की उपयोगिता के बारे में उपर्युक्त सारे संशय, 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान तत्कालिक वैज्ञानिक समझ के कारण थे। उस समय तक सभी पदार्थों में, – अणुओं से लेकर अंतरीक्षीय पदार्थों तक बल–क्षेत्र का प्रभाव, न्यूटन और लेव़निज द्वारा 1687 में प्रतिपादित गति विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर समझा जा सकता था। वर्तमान में इस गति विज्ञान को क्लासिकल–मेकेनिक के नाम से जाना जाता है।

परंतु 20वीं शताब्दी के पहुँचने तक यह स्पष्ट होने लगा था कि अति सूक्ष्म द्रव्यमान के परमाणुओं जैसे इलेक्ट्रान पर बल–क्षेत्र का प्रभाव, उनका विचरण व छितराव क्लासिकल–मेकेनिक के सिद्धांतों द्वारा समझना असंभव है।

परमाणु जगत की यांत्रिकी और उनका गति–विज्ञान क्वान्टम–मेकेनिक के नाम से जाना जाने वाला विशिष्ट नियमों द्वारा निर्धारित होता है। इस आशय का अनुभव वैज्ञानिकों को ठोस पदार्थों में इलेक्ट्रानिक गुणों के अध्ययन द्वारा पिछली शताब्दी में भरपूर रूप से हुआ। निम्न तापमान पर पदार्थों के गुणों के अध्ययन ने परमाणु जगत के रहस्यों को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

?k"k.k foghu vfr pkydrk¼lqij¶y;qfMVh vkSj lqijdUMfDVfoVh½

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में निम्न तापमान पर प्रयोगों के दौरान वैज्ञानिकों ने अत्यन्त आश्चर्यजनक खोजें की। इसमें प्रमुख खोजें थी, अति निम्न तापमान पर भी हीलियम–तत्त्व के लिए ठोस–अवस्था का अभाव और उसकी द्रव अवस्था में 2.2K पर घर्षण विहीन प्रवाह (सुपरफ्ल्यूडिटी) की खोज। इसी प्रकार धातुओं में क्लासिकल–मेकेनिक की समझ के विपरीत, इलेक्ट्रान की चालकता में निम्न तापमान पर अपूर्व वृद्धि और बहुतों में घर्षण विहीन अतिचालकता (सुपर कन्डक्टिविटी) की खोज। सुपरफ्ल्यूडिटी में हिलियम–अणुओं व सुपरकन्डक्टिविटी में इलेक्ट्रानों की अवस्था पदार्थों में परमाणु–जगत के रहस्यों को लौकिक जगत में नाटकीय ढंग से उजागर करती हैं।

d.k rjax dk }Srokn

सुपरफ्ल्यूडिटी और सुपरकन्डक्टिविटी में क्रमशः हीलियम अणुओं व इलेक्ट्रान का सतत अविरल प्रवाह क्वान्टम–मेकेनिक के सिद्धान्तों द्वारा ही समझा जा सकता है। क्वान्टम मेकेनिक प्रमुख रूप से परमाणु जगत में व्याप्त कण और तरंग के परस्पर विरोधी व्यवहार के संयोजन पर आधारित है। इसके अनुसार परमाणु एक द्रव्यमान–युक्त कण के साथ ही साथ एक तरंग की तरह व्यवहार करते हैं। इस कण और तरंग के संयोजन का परमाणुओं के आपसी संगठन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। सुपरफ्ल्यूडिटी में हीलियम द्रव अणुओं और सुपरकन्डक्टिविटी में इलेक्ट्रान के बीच एक विशिष्ट सामूहिक–अवस्था के निर्माण के कारण होती है। इस अवस्था में भाग लेने वाले कणों के बीच तरंग की तरह की कला–संबद्धता (फेज–कोहरेंस) स्थापित होती है जिसके कारण उसमें ऊर्जा का प्रवाह एक सुसंगत तरीके से होता है।

सामान्य–अवस्था के कणों के आपसी टकराव से उत्पन्न बिखराव, घर्षण द्वारा गतिमान में अवरोध करता है जबकि कणों की सामूहिक–बन्धित अवस्था में उनका व्यक्तिगत छितराव असम्भव हो जाता है। इस प्रकार निम्न ताप पर एक सतत और अविरल प्रवाह बना रहता है।

बीसवीं शताब्दी के शुरू में प्रतिपादित क्वान्टम–मेकेनिक के सिद्धान्तों द्वारा ठोस पदार्थों के गुणों और उनमें व्याप्त विषमताओं की व्याख्या में आधुनिक विज्ञान अभूतपूर्व रूप से अब सक्षम है।

अधिकार की अपनी एक मर्यादा होती है। उस मर्यादा की रक्षा करने के लिए अधिकार–प्रयोग को संयत रखना पड़ता है।

– रवीन्द्रनाथ टैगोर

मेरी भावना का लोकतंत्र वह है जिसमें छोटे से छोटे व्यक्ति की आवाज को भी उतना ही महत्व मिले, जितना एक समूह की आवाज को।

– महात्मा गाँधी

iy Hkj e

सूज़न विश्वनाथन*

उसकी मुसकान में कुछ मिठास थी, जो ग्रीष्म की दहशत को दूर करती थी। वह जनवरी का महीना था और दोपहर की तपिश धान को तब तक झुलसाती थी जब तक किसान पुआल के ढेरों को बांधने पर मजबूर न हो जाएँ और यही उम्मीद करें कि काम पूरा होने से पहले ही मच्छरों की महामारी खत्म हो जाए। चिकनगुनिया के कारण बुखार ऐसे चढ़ता था कि एक के बाद एक मज़दूर मर रहे थे। वे मटमैले रंगों वाले लिबास पहने आकर्षक नन्स द्वारा चलाये जा रहे स्थानीय चिकित्सालयों में जाते थे और खड़े रहने की कोशिश करते थे जबकि ज्वर का प्रकोप उनके खून में दौड़ रहा होता था। इस ज्वर के कारण पलक्कड़ में सत्रह हज़ार और त्रिवेन्द्रम में पंद्रह हज़ार लोगों की मौत हुई, फिर भी फसल काटने का काम लगातार चलना था। मम्मन और जॉय, इसाक और इद्रीस, पणिक्कर और वायनद रवि गहरे हरे पत्तों वाले आम के पेड़ों तले बैठकर अपने–अपने परिवारों के लिए रो रहे थे। उनसे बातें करने वाला साधु उनकी निजी व्यथा को सुनने से इनकार कर रहा था। उसकी भूरी आँखें स्पष्ट थीं, उसकी पगड़ी सोने की एक पट्टी से उसके सिर पर कसी हुई थी। उसकी दाढ़ी काली और घुँघराली थी। 'ईश्वर सबकी इच्छाएँ पूरी करेंगे', उसने कहा।

लोग उसके धर्म के बारे में निश्चित नहीं थे; वह ईसाई हो सकता था, या मुसलमान या फिर हिन्दू। उसके व्यक्तित्व में ऐसा कोई निशान नहीं था जो उसकी जाति या धर्म को स्पष्ट कर सके। वह अपनी बातों को साफ़गोई से रखता था. .. उसके भाषण में एक अकल्पनीय गुण था। वह उनको दूसरे मनीषी, श्री श्री रवि की याद दिलाता था। वह भी मलयाली था, कुछ लोगों का कहना था कि वह कोंकणी था। एक साधु का कोई घर, कोई मूल नहीं होता और परलोक के सिवा उसे और कोई मोह नहीं होता।

फिर भी बीमारी, मृत्यु, गर्मी और कटाई का इंतज़ार कर रही धान की फसल का क्या किया जाये। सूरज के ढलने के इंतज़ार में वे और चाय पीते रहे। उनको यह भी मालूम था कि एक–एक लम्हा बीतने पर उनके परिवार उनके लिए चिंता करते हुए राह देख रहे होंगे। कर्ज़ चुकाने की नौबत आ गयी थी, बैंक से रोज़ फोन आता था। रवि की बेटी की शादी एक हफ्ते के अंदर होनी थी। इद्रीस ने उसके सामने अपने परिवार के गहने उधार पर देने का प्रस्ताव रखा था लेकिन उसने मना कर दिया, यह जानते हुए कि उन गहनों पर किए गए जरी का काम उसके समुदाय के सांस्कृतिक मानदंडों के करीब नहीं था। वे ईसाइयों का अनुकरण करते थे; वे मोटे, भारी सोने के गहने पसंद करते थे, जो लड़की के लिए पूंजी के तौर पर माना जाता था। सोना गहने के रूप में नहीं बल्कि धन के रूप में भेंट होता था।

साधु ने उन लोगों की तरफ देखा और कहा – 'घर जाइए, आपको वह सब कुछ प्राप्त होगा जो आप चाहते हैं'। उसके बाद वह चला गया।

उधर रवि मर जाने की उम्मीद से नदी में कूद पड़ा था लेकिन डूबना इतना आसान नहीं था क्योंकि मगरमच्छ उसकी ताक में थे। जलबेंत में इधर–उधर बहता हुआ वह तैरने लगा और चिपचिपे कीचड़ के अंदर, नरकुलों में जा छुपा, इस उम्मीद से कि लाशों के आदी मगरमच्छ वहाँ से हट जाएँगे। वे सच में वहाँ से हट गए क्योंकि उनकी नज़र में एक बड़ा सा कछुआ आ गया था जिसको उन्होने चट्टानों पर पटक दिया। वह उनको अपनी तरफ देखते हुए देख सकता था, उसको ढूंढते हुए उनकी आँखों में कुछ था जो जाना–पहचाना सा था। जो लोग अपने शिकार ढूंढते हैं, उनकी आँखों का वही भाव होता है। पलकों को इस तरह से झपकाना, ऐसी खोजी निगाहें जो कच्ची खाल या गंध ढूंढ निकालती हैं और भरपूर मासूमियत में डर भर देती हैं। रवि ऐसी नज़र से परिचित था। अक्सर लोग यह सोचते थे कि चूंकि वह गरीब है, इसलिए चोर है। उसे लिखने आता था, पेचीदा हिसाब कर लेता था और अगर उसके पास एक विडियो कैमरा होता तो वह 'डॉकुमेंटरी' भी बना सकता था।

बाकी लोगों को ध्यान ही नहीं रहा कि वह चला गया था, क्योंकि वे अपने घर लौटने को बेचैन थे। धान के सँकरे किनारों पर चलते हुए, एक एक कदम ध्यान से रखते हुए। सूखा मौसम होने के कारण अगर कोई भी धान के खेतों में गिर जाता तो धान की खूंटी से खँरोच लग सकती थी। शारीरिक तौर पर हट्टा कट्टा होना ही काफी नहीं था, छोटी छोटी अड़चनों से बचना भी आना ज़रूरी था। मगरमच्छों की तेज़ आँखों से बचकर आखिर में रवि ने बस पकड़ी। उसके कीचड़ से सने कपड़ों की वजह से लोग उससे कुछ दूरी बरत रहे थे। उससे पराजय की अजीब सी बू आ रही थी जोकि बासी शराब से भी तेज़ थी।

बस से उतर कर वह एक लाइन में खड़ा हो गया, और

कहानीकार सामाजिक विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रोफेसर हैं।

उस वक्त का इंतज़ार करने लगा जब उसे अपनी मनचाही चीज़ – ब्रांडी की एक बोतल मिलेगी। ऐसा होते होते तीन घंटे बीत गए। आखिर में वह इतना थक गया कि वह उसे पी न सका और अपनी बोतल को अपनी धोती में खोंस लिया। यह उसकी आखिरी और बेहतरीन धोती थी, बाकी सब तो चीथड़ा हो गयी थी।

वह ताड़ी की दुकान पर गया जहां उसने तला हुआ मांस मांगा। दुकान चलाने वाली औरत ने उसको बाहर निकाल दिया क्योंकि वह अब ताड़ी नहीं पीता था। सरकारी शराब की दुकानों ने एक नयी अर्थव्यवस्था इज़ाद की थी जिससे सड़कों पर बोतलों का ढेर लगा रहता था क्योंकि कूड़े कचड़े का धंधा करने वाले काँच की 'रिसायकलिंग' में दिलचस्पी नहीं रखते थे। दुनिया का अंत तो वैसे ही होने वाला था, उसको सुलगते और बिखरते हुए देखकर गंभीर होने की क्या ज़रूरत थी। लाइन में खड़े रहते हुए उसने किसी से भी बात नहीं की – सभी उसी की तरह बेरोज़गार थे। उन सबके चेहरे मरियल से और आँखें धँसी हुई थीं। वे न तो रंडीबाजी में थे और न ही किसी धंधे में। लंपटता से तो वे परे ही थे। नफरत की नयी राजनीति से वे नीरसता से भर गए थे। अगर हर कोई हर किसी से नफरत करने लगे तो जासूस और कॉमरेड, पीड़ित और अपराधी में क्या फर्क रह जाएगा।

कभी उसके चेहरे की लकीरें साफ़ हुआ करती थीं, नुकीली नाक, बड़ी–बड़ी आँखें, भौहें चौड़ी, साफ–सुथरी और सुव्यवस्थित दाढ़ी। वह खुद को आकर्षक समझता था। फिर पीने और झगड़ने का सिलसिला रोज़मर्रा का काम हो गया। उसने पुआल के ढेर के सहारे रखी बोतल से शराब पी। पुआल का ढेर उसी ने सूखी घास को निकालकर, नारियल के पेड़ के इर्द–गिर्द सलीके से इकट्ठा कर लगाया था। वह रोज़ शराब की एक पूरी बोतल पी जाता था फिर भी अपने आप को शराब का आदी कभी नहीं मानता था। उसके जितने भी जानकार थे, वे तीन या चार बोतलें पी लेते थे, लेकिन वह तो छोटा मोटा शराबी था। पियक्कड़ नहीं, कतई नहीं। वह वहाँ सूखी घास के सहारे बैठा था। जब घास से उसकी पीठ में खुजली होने लगी तब वह जिस ढलान पर बैठा था, उससे मुश्किल से नीचे उतरकर घर का रास्ता ढूंढने की कोशिश करने लगा।

तभी, उसने अपने सामने एक आदमी को खड़ा पाया। वह आदमी निश्चित तौर पर उसका दुश्मन था। वह आदमी भी नशे में धुत्त कोई 'हायम' गा रहा था। और तो और माचिस की तीली के छिटकने से उसकी बांह झुलस गयी थी। उससे जले हुए बालों की बू आ रही थी। उस कूप अंधेरे में भी रवि को पता था की वह आदमी उसका दुश्मन था। दोनों ने एक दूसरे का रास्ता रोक लिया। आधी रात को दोनों ने आपस में एक भयंकर लड़ाई लड़ी। फिर रवि ने अपना धारदार चाकू निकाला जिससे वह आम काटता और गन्ने छीला करता था। उसने चाकू उस आदमी की पसलियों के बीच आसानी से उतार दिया। एक मंझे हुए कथकली नर्तक की तरह वह आदमी नीचे ढह गया। यह उसकी आखिरी स्वैच्छिक हरकत थी। रात की चाँदनी में रवि ने उस आदमी के साथ ही अपने जीवन को भी ओझल होते हुए देखा..... अब कुछ भी पहले जैसा नहीं रह जाएगा।

अगली सुबह पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। पुलिस अफसर एक आकर्षक व्यक्ति था और रवि की पत्नी और बच्चे को कोई असुविधा न हो, इस बात को लेकर काफी चिंतित था। रवि अपने 'इडियप्पम'[1] की तरफ देखा और हर सुबह की तरह उसे आहिस्ता–आहिस्ता खाता रहा। नारियल की खुरचन का स्वाद कोमल और ताज़ा था, उसके सीरे को भी बहुत अच्छी तरह से पाउडर में तब्दील किया गया था। उसकी पत्नी गृहणियों में सबसे अक्लमंद थी। उनके बगीचे को वह इस तरह इस्तेमाल करती थी मानो वह स्वर्ग का हिस्सा हो। रात को वह उसके बगल में लेटा था लेकिन वह कुछ नहीं बोली थी। कभी–कभी जब वह आधी रात के बाद, देर से लौटता तो वह चिल्लाना शुरू कर देती थी। लेकिन अबकी बार कदम्मा ने कुछ नहीं कहा था, बस उसे अपनी बाहों में भर लिया था। शायद उसे आभास हो गया था कि उनका साथ बस कुछ दिनों तक ही था।

'अपना पल्लहरम[2] खत्म करो। उसके बाद तुम्हें मेरे साथ आना होगा'। 'क्यों ?' उसने पूछा। उसने अपनी पत्नी को नहीं बताया था कि उसने गलती से 'बौंकोस्ट'[3] का कत्ल कर दिया था। बताने का कोई मतलब नहीं था, या तो उसकी जान जाती या 'हायम' गाने वाले की। जेल में जिंदगी बिताने के लिए नियति ने उसे चुना था। अब उसे वक्त पर खाना मिला करेगा। उसको ऐसी जिंदगी से कोई परेशानी नहीं थी। 'अब मुझे फ्रिज के लोन के बारे में, मोटरसाइकिल के लिए, बेचारी बच्ची की शादी और उसके गहनों के लिए या 'चिट्टी फंड' या बैंक खाते से ज्यादा पैसा निकालने के बारे में चिंता करने की ज़रूरत नहीं होगी', उसने सोचा। उसने खुद को मुक्त महसूस किया। 'मेरी ख़्वाहिश पूरी हुई'।

पुलिस अफ़सर ने उसकी तरफ़ उदासी से देखा। पुलिस अफ़सर बनने से पहले वह स्कूल मास्टर रह चुका था। वह रोज़ कई परिवारों से मिलता था और सबकी वही कहानी थी – जलवायु परिवर्तन, फ़सल का नुकसान, बुढ़ापा और मजबूरी, 'गल्फ़' से भेजे गए पैसों का देरी से पहुँचना या फिर न पहुँचना, उसे ऐसा लगता था मानो ये बेबस, लाचार लोग उसकी आत्मा को अपनी ओर खींचते थे। उसे यह लगने लगा था कि स्कूल मास्टर और भिखारी के बीच, स्कूल मास्टर और पुलिसवाले के बीच कोई फ़र्क न रह गया था। यह ऐसा काम था जो स्पष्ट और निष्पक्ष होकर ही किया जा सकता था। पिछली रात, उसने रवि को कत्ल करते हुए देखा था पर उसने तय किया कि अगली सुबह ही उससे निपटा जाएगा। खिड़की पर खड़ा रहकर, अपने ही घर की आड़ में छिपकर उसने क़त्ल को अपनी आँखों के सामने होते हुए देखा था जोकि एक सपने

से कम नहीं था। वह बाहर की तरफ नहीं भागा, क्योंकि वह जानता था कि लाश वहीं पड़ी होगी, लावारिस, बिना किसी मातम के, आस्था और आत्मा रहित, निस्तेज..... यह रोज़मर्रा की बात थी। एक पुलिस अफ़सर जो एक क़त्ल का गवाह था, उसके लिए भाग कर जाना और क़ातिल से पूछताछ करने का कोई मतलब नहीं था। वह सिर्फ़ सुबह होने का इंतज़ार कर सकता था। गाँव में सब एक दूसरे को जानते थे।

पूछताछ के वक्त रवि ने लगातार अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से इन्कार किया। उसका चेहरा फिर से खिल उठा था, चेहरे पर तीखी लकीरें और गड्ढे किसी मानचित्र का आभास दे रहे थे। कल उसने चाँद को देखा था, कितना प्यारा लग रहा था! भरा–पूरा, कितना सुनहरा। कहीं पर 'तीयम'[4] चल रह था। वह वहाँ गया था। आग बुझ चुकी थी। हाँ, अंगारों की अनुगूँज उनके द्वारा देखी गयी सुनहरी लपटों की याद दिला रही थी। खर और धान की देवी ने खुद उन्हे दर्शन दिया था। उन्होंने खुद को 'तियम' में समाहित कर दिया था। वह उसके सामने प्रकट हुई थी। हालांकि वह खुद देवता नहीं था फिर भी उसने उसको महसूस किया। चावल और भोजन, ऐश्वर्य और आनंद– यह सब कुछ उसे उस नृत्य में भाग लेने पर ही मिला था। सब–इंस्पेक्टर अनीस क्या कह रहा था, यह उसकी समझ से परे था।

पुलिस थाने में उसे एक बेंच पर बिठाया गया। अब उसके प्रति वे लोग भावहीन हो गए थे। चूंकि वह अपना अपराध कबूल नहीं कर रहा था, वह उनके लिए खिलौना बन गया था। वे उससे पूछताछ करते, उसे घर जाने देते और फिर बुलाते। वे कातिलों के आदी हो चुके थे क्योंकि रोज़ उनका एक या दो से सामना होता ही था।

दो महिलाएं पुलिस थाने में आयीं। दोनों में से एक ने अपना पहचान–पत्र खो दिया था। वह कुछ अस्त–व्यस्त सी लग रही थी। रवि को लगा कि वे महिलाएं परदेसी थीं लेकिन वे मलयालम में इस तरह से बात कर रही थीं जैसे उनकी अपनी भाषा हो, सीखी हुई नहीं। रवि ने उनको बड़ी जिज्ञासा से देखा। वे उससे उम्र में बड़ी थीं। उन्होंने उसकी तरफ नज़र दौड़ाई लेकिन कुछ खास दिलचस्पी के साथ नहीं। उनके लिए तो वह साधारण कपड़े पहने कोई पुलिसवाला हो सकता था।

दोनों में से ज़्यादा उम्रदराज़ औरत, महिला पुलिस अफसर को समझा रही थी कि वह दिल्ली से आयी थी, हवाई जहाज़ में सफ़र करके। सभी की दिलचस्पी इस बात से बढ़ गयी। वह एक होटल में गयी थी, फिर उसकी सहेली उसे वहाँ से विश्वविद्यालय ले गयी। इसी बीच उसका कार्ड खो गया, शायद उसने उसे कहीं गिरा दिया था। यह उसका वोटर कार्ड था।

पुलिसवाले अचानक चौकन्ने हो गए। एक पल में उनके चेहरे का भाव बदल गया। उसके पास अपनी बात का कोई सबूत नहीं था। उनकी पूछताछ का सिलसिला शुरू हो गया। वह शांत थी, उसकी दोस्त उससे भी ज्यादा शांत। ज़ाहिर था, वे सत्ता की आदी थीं। उनको पुलिसवालों से बात करने की भी आदत थी जैसे वे उनके दोस्त हों। उन्होंने अपनी बेंचों के करीब के जेलखाने को कुछ दिलचस्पी से देखा। ज़ाहिर है कि वे कभी जेल के अंदर नहीं गयी थीं – जेल को इतने करीब से देखने की इस परिस्थिति में वे उसकी तरफ ज्यादा रुचि दिखा रही थीं जिसको वे किसी जंगली जानवर को क़ैद करने की जगह मानती थीं। वे वापस मुड़कर पुलिसवालों से बात करने लगीं और अपनी याचिका लिखने के लिए कागज यूं मांगने लगीं मानो यह उनका नैतिक अधिकार हो। उनको, पुलिसवालों और एकमात्र महिला पुलिस को आपस में बातचीत करते हुए रवि हैरानी के साथ इस तरह देख रहा था जैसे वे वास्तविक दुनिया में वास्तविक लोग हों। उनको सुनते हुए उसने सोचा... आज़ादी, समानता, और जीने का अधिकार – यह सब अचानक उसके लिए काल्पनिक नहीं रह गया था। फिर उसकी आँखें भावहीन हो गईं क्योंकि उसको अहसास हुआ कि उसकी अंतरात्मा खो चुकी थी। अस्त–व्यस्त सी 'स्कॉलर' दिल्ली से अपने लंबे जहाज़ी सफर का वृतांत सुनाये जा रही थी – चार शहरों में चार पड़ाव, कई पहाड़ों, नदियों और सागरों जिसमें से एक 'अरेबियन सी' भी था, पार करने के बावजूद जहाज़ को पहुँचने में कोई देरी नहीं हुई थी। पुलिसवाले ने उसके कंधे के ऊपर से घुमावदार छुरा दूसरे पुलिसवाले को थमाया। 'यह वह छुरा नहीं है जो उन्होने इस्तेमाल किया था, यह तो नया है और उसी अखबार में लपेटा हुआ है जिसमे खरीदा गया था। मर्डर वेपन के बरामद होने तक इंतज़ार करो। यह दोधारी हथियार था जो सीधे पसलियों से होता हुआ फेफड़ों में जा घुसा था।'

उसने दोनों महिलाओं को थरथराते हुए देखा और उनकी आँखों में घबराहट दिखी। उन दोनो महिलाओं, जिन्होंने अपना जीवन शानदार बुद्धिजीवी दुनिया में बिताया था, ने एक दूसरे की तरफ देखते हुए सोचा (रवि को यह सब दिख रहा था) – ऐसी शांतिपूर्ण जगह में कत्ल! उन्होंने अपने खोये हुए पहचान–पत्र की याचिका दर्ज़ की, स्टाफ की तरफ देखकर मुस्कराईं, अपनी गाड़ी में बैठीं और दोपहर की धूप की चटख रोशनी में रवाना हो गईं। पल भर में ही वह समझ गया था कि उसका कोई भविष्य नहीं था।

अनुवाद – देविना अक्षयवर

---

1. नाश्ते के तौर पर चावल के आटे और घिसे नारियल का बना हुआ भोजन 2. त्योहार के अवसर पर तैयार विशेष भोजन 3. ईसाई समुदाय का कट्टरपंथी अनुयायी 4. धान की फ़सल के अवसर पर मनाया जाने वाला उत्सव। यह आग के इर्द–गिर्द नृत्य आदि करने की प्रथा है, वैसे ही जैसे पंजाब में 'लोहड़ी'।

tc nhi tys vkuk
tc 'kke <ys vkuk -----

– डॉ. संदीप चटर्जी*

उर्मिला के ओठों पर 'चित्तचोर' का यह गाना हिलोरे मार रहा था। वह आज भी रोज की तरह, अपने प्रीत का काज़ल नैनों में मले अरविंद की राह निहार रही थी। भाद्रपद की शुक्ला रात्रि पर आज अरविंद को गायब हुए पूरे बीस साल हो जाएंगे। राजस्थान से मिल रही भारत–पाक सीमा पर एक रोज भेड़ चराते हुए उसे पकड़ लिया गया था। शायद गलती उसकी थी कि भेड़ चराते–चराते उसे दिशा–स्थान का ज्ञान न रहा। दूसरी ओर से सीमा सुरक्षा जवानों ने उसे संदिग्ध व्यक्ति समझ कर पकड़ लिया एवं जांच हेतु अपने साथ ले गए। बहुत समझाने पर भी वे मानने को तैयार नहीं थे कि वह निर्दोष हैं। तब से आज तक अरविंद सरहद के पार किसी अनजान स्थान पर अकारण कैद की जिन्दगी जीने को अभिशप्त है। गांव के मुखिया एवं सभी छोटे–बड़ों ने कोशिश की अरविंद को छुड़ाने की, यहां तक कि राजनीतिक स्तर पर भी प्रयास किए गए पर सभी ओर निराशा ही हाथ लगी।

आश्विन–कार्तिक के त्यौहार भरे महीने आते और उर्मिला के खाली जीवन में उत्साह बाँधने गांव की लगभग सभी महिलाएं आतीं। कोई चिट्ठी–पत्री की पूछता, तो कोई अरविंद के वापस आने की खबर। आशा की किरण दूर–दूर तक नज़र नहीं आ रही थी। साधारण सी मध्यवर्गीय उर्मिला आज पलपल की डगर बुहारते पूरे चालीस वर्ष की हो जाएगी। पता नहीं कितनी बार वो निकट बार्डर पर गई होगी, इस आशा से कि दूसरी ओर से अभी अरविंद आता ही होगा। अरविंद से मिले कान के बुंदे और मेले से दिलवाए गए फूलों के गुलदस्तों को देख आज भी उसकी आंखों से आँसुओं का रेला बह जाता है। अपने पुत्र, अनमोल को समझाने के लिए आज उसके पास कुछ भी नहीं है। असल में घटनाएँ इतनी तेजी से घटीं कि उसने कभी सोचा भी न था कि जिस अरविंद के साथ उसकी डोर बंधी है, वह इतनी जल्दी सांझ के तारे की तरह लुप्त हो जाएगा। फिर कोई खबर भी तो नहीं, कोई चिट्ठी–पत्री, कोई टेलीफोन, कुछ भी तो नहीं। क्या सरहद पार लोग इतने क्रूर हैं, जो एक पत्नी एवं मां का दर्द नहीं समझते। जो एक बच्चे के पिता से विछिन्न होने का भी गम नहीं समझते। क्या भेड़–चराते हुए अनजाने में कुछ गज इधर–उधर हो जाने पर इतनी बड़ी सजा हो जाती है। उसे देश का दुश्मन मान लिया जाता है। क्या राजनीतिक कारणों के चलते आम आदमी की जिन्दगी खतरों का दीदार बन जाएगी। क्या हम प्रेम–भाईचारे की भाषा से दिलों की नफरत को दूर नहीं कर सकते।

उर्मिला ने तय किया कि वह अपनी बात प्रधानमंत्री महोदय तक चिट्ठी के माध्यम से पहुंचाएगी और निवेदन करेगी कि वह व्यक्तिगत स्तर पर अरविंद को छुड़ाने हेतु पड़ोसी देश के राष्ट्रपति को पत्र लिखें। लगभग आठ–दस महीनों की दौड़–भाग के बाद उसकी मेहनत रंग लाई और उसे प्रधानमंत्री कार्यालय से पत्र मिला कि सरहद पार से अरविंद की रिहाई मंजूर हो गई है और कुछ ही दिनों में उसे छोड़ दिया जाएगा। सद्भावना के तौर पर पड़ोसी सरकार ने कुछ और गरीब कैदियों को रिहा करने का फैसला किया है।

उर्मिला आज बहुत खुश है। आज संयोग से नवरात्रि है और उसके पति को रिहा किया जा रहा है। अनमोल भी आज अठारह वर्ष उपरांत स्वयं को गौरवान्वित और सम्पूर्ण महसूस कर रहा है। आज वह पिता की अगवाई के लिए बेचैन है।

आत्मविश्वास, दृढ़–संकल्पना एवं संबंधों की मिठास से पिरोई हुई शक्ति ने उर्मिला के जीवन में वो कर दिखाया, जो दूसरों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। विचारों एवं मन की शुद्धता, दृढ़ संकल्प शक्ति और ईश्वर रूपी सत्य के द्वीप की महिमा ही अपरम्पार है। उर्मिला के जीवन में जैसे वसंत उतर आया हो।

अरविंद को देख, वह आँचल बिखेर कर गाने लगी ....

जहां पहली बार मिले थे हम
जिस जगह से संग चले थे हम
नदिया के किनारे आज उसी
अमवा के तले आना
जब दीप जले आना .....

* यह एक वास्तविक घटना है। पात्र एवं काल कहानी की संवेदनशीलता को देखते हुए बदल दिए गए हैं।

भलाई करने वाले स्वभाव–वश ही भलाई करते हैं। उन्हें यश और उपलब्धियों की ही नहीं, स्वर्ग की भी कामना नहीं होती।
– प्रेमचंद

जिस देश में हमारा जन्म हुआ है, हमें खुश होकर उसकी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि प्रकृति ने हमारे लिए यही लक्ष्य निर्धारित किया है।
– महात्मा गांधी

**कहानीकार जेएनयू में कुलसचिव हैं।*

आधी दुनिया

असग़र वजाहत*

विज्ञान और तकनीक ने संसार को बहुत छोटा बना दिया है। पूरे संसार का चक्कर लाखों लोग लगा चुके हैं। आज क्या है संसार में जो लुका–छुपा रह गया है ? लेकिन सोलहवीं शताब्दी में तो ऐसा नहीं था। संसार का पूरा नक्शा ही नहीं बन सका था। किसी को नहीं पता था कि संसार का ओर–छोर क्या है ? कितने लोग बसते हैं ? कितनी तरह के लोग रहते हैं ? कितने देश हैं ? कितनी नदियाँ हैं ? उस समय का संसार सीमित होते हुए भी अनजान था। कठिन था। चुनौती भरा और रहस्यमय था। उस ज़माने में इस्फ़हान के बारे में कहा जाता था कि वह 'आधी दुनिया' के बराबर है। इस्फ़हान का सही या मूल उच्चारण निस्फ (आधा) और जहान (संसार) है। मतलब यह कि इस्फ़हान देखने का मतलब था कि आधी दुनिया देख ली और आधी दुनिया ही देख पाना असम्भव जैसा था उस युग में।

तेहरान से 340 किलोमीटर दक्षिण में इस्फ़हान सैकड़ों वर्षों तक ईरान की राजधानी था। आज राजधानी न होते हुए उसकी हैसियत राजधानी से कम नहीं है। ईरानी संस्कृति तेहरान में नहीं बल्कि इस्फ़हान के रगों में धड़कती है। शहर में अतीत का गौरव ही नहीं बल्कि वर्तमान का सौन्दर्य भी है। कला और संस्कृति के क्षेत्र में, फिल्म और साहित्य के मैदान में, संगीत और स्थापत्य कला में आज भी इस्फ़हान आगे है। यहाँ बाज़ारों में घूमते हुए उस इतिहास को महसूस किया जा सकता है जिसके कारण इस्फ़हान को आधा संसार कहा जाता था। सैकड़ों श्रेष्ठ ऐतिहासिक इमारतों, दसियों बाग़ों और प्राचीन बाज़ारों को अपने अन्दर समेटे यह शहर कदम–कदम पर चौंका देता है। सड़क पर चलते हुए पेड़ों के झुरमुट के पीछे किसी पुरानी इमारत का ऐसा फाटक दिखाई पड़ताा है कि पैर अपने आप ठहर जाते हैं। लगता है कि कुछ ऐसा नहीं है जिसके पीछे गहरी कलात्मक दृष्टि न हो। दुकानों के बोर्ड और इश्तिहार तक कलाकृतियों जैसे लगते हैं। यही वजह है कि यूनिस्को ने इस शहर को विश्व धरोहर की मान्यता दी है।

ढाई हजार साल पुराने इस्फ़हान का लम्बा–चौड़ा इतिहास है जिसकी कड़ियाँ भारत से भी जुड़ती हैं। शेरशाह सूरी से हारने के बाद मुगल बादशाह हुमायूँ यहीं आया था और उसे इसी शहर में ईरान के सम्राट शाह अब्बास सफ़वी ने ग्यारह साल उसकी मेहमानदारी की थी और पुनः हिन्दुस्तान हासिल करने के लिए फौजी सहायता भी दी थी। ईरान के पुराने यानी हख़ामंशी साम्राज्य (ई. 700 वर्ष पूर्व) की स्थापत्य कला से प्रेरित 'चेहेल स्तून' मतलब चालीस खम्भोंवाले महल में दीवारों पर बड़ी–बड़ी तस्वीरें पेंट की गई हैं। इनमें से एक तस्वीर में मुगल सम्राट हुमायूँ को शाह अब्बास सफ़वी द्वितीय के साथ एक भोज में चित्रित किया गया है।

इस शहर का इतिहास उतना ही पुराना है जितना ईरान का इतिहास है। ईसा से 700 वर्ष पूर्व हखामंशी सम्राटों के साथ में और उसके बाद सासानी साम्राज्य (ई. 200 वर्ष पूर्व) में इस्फ़हान बड़ा शहर था। लेकिन इसका स्वर्ण युग शाह अब्बास सफ़वी के शासनकाल से प्रारम्भ होता है। शाह अब्बास सफ़वी तबरेज़ से अपनी राजधानी इस्फ़हान ले आए थे। उस समय की कई शानदार इमारतें अब भी यहाँ हैं। उसके बाद सफ़वी सम्राटों की राजधानी इस्फ़हान अफ़ग़ानी हमलों का शिकार हुआ और अन्ततः राजधानी तेहरान चले जाने के कारण शहर सम्राट विहीन हो गया।

टैक्सीवाले ने मुझे अमीर कबीर होटल के सामने छोड़ा था। होटल में बताया गया कि एक कमरे का किराया बीस डॉलर है। मैं धन्यवाद कहकर वापस जाने लगा तो होटल के मालिक ने पूछा कि क्या कमरा 'शेयर' कर सकता हूँ। मेरे हाँ कहने पर बताया कि 'डॉरमेट्री' में मुझे एक 'बेड' कोई दो डॉलर में मिल सकता है। मैं तैयार हो गया। 'डॉरमेट्री' बहुत साफ सुथरी थी। छह पलंग बिछे थे। बाकायदा बेडकवर वगैरा सब थे। मुझसे एक फार्म भराया गया जिसमें लिखा था कि सामान की ज़िमेदारी मेरी ही है और इसी तरह की तमाम बातें थीं। मैंने अपने लिए कोने का एक बेड चुन लिया और सामान रखकर घूमने निकल पड़ा। टूरिस्ट गाइड किताबों से पता चला कि मुख्य और प्राचीन इमारतें करीब ही हैं और उन्हें टहल–घूम कर देखा जा सकता है। पहले तो मैं दिशाहीन होकर घूमने लगा। पुराने कच्ची मिट्टी और लकड़ी के मकान देखे। वैसे दरवाजे और दर जो अपने यहाँ पुराने कस्बों और गाँवों में होते हैं। कोई दो–तीन किलोमीटर का चक्कर लगाकर मैंने पूछना शुरू किया कि मशहूर इमाम मस्जिद किधर है। अपने क्षेत्रफल में, चीन के संसार के सबसे बड़े अहाते माउ त्सेतुंग स्वायर से कुछ ही छोटी यह मस्जिद इस्लामी दुनिया की सबसे बड़ी इमारत है। शाह अब्बास सफ़वी महान ने इसे अपने जीवन की एक बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा के रूप में बनवाया था।

जैसा कि मेरे साथ होता है, मैं इस विशाल इमारत में उस द्वार से दाखिल नहीं हो पाया जो इसका दरवाजा है। लेकिन जब मैं इसके अन्दर गया तो आधी दुनिया देख लेने के

*लेखक जामिया मिल्लिया इस्लामिया के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं।

बाद भी हैरत में पड़ गया। इतनी बड़ी, व्यापक, भव्य और सुन्दर इमारत मैंने जीवन में कभी नहीं देखी थी। पहले तो यह समझने में समय लगा कि आखिर ये है क्या ? ये ठीक है कि इसके एक कोने पर मस्जिद है। एक दूसरे सिरे पर कोई मक़बरा है लेकिन चारों तरफ फैला विशाल भवन क्या है ? अन्दर गया तो पता चला कि इस कॉम्प्लेक्स की चहारदीवारी दरअसल दोमंजिला है। पहली मंजिल पर आमने–सामने दुकाने हैं और बीच में कोई पचास फुट चौड़ा सड़क जैसा रास्ता है। इन दुकानों की इमारतों के साथ–साथ बनी कुछ और इमारते हैं। कहीं–कहीं इमारत तीन मंजिल की हैं और उनके चौड़े परकोटे हैं, खुले हुए बरामदेनुमा हॉल हैं। ईरानी साज–सज्जा मतलब रंगीन टायल्स लगाकर बेलबूटे बनाना तथा कुरान की आयतों के आधार पर कैलीग्राफी से यह पूरी इमारत सजी है। मैंने तीन तरफ बड़े विशाल बाजार का चक्कर लगाया और मुख्य मस्जिद तक गया। जितना विशाल घेरा है उतनी बड़ी मस्जिद नहीं है और न उतनी प्रभावशाली है।

सफ़वी साम्राज्य की एक और पहचान चालीस खम्भोंवाली इमारत भी है। एक बाग के अन्दर बनी यह इमारत सम्राट ने विशेष आयोजनों के लिए बनवाई थी। मुख्य द्वार से अन्दर जाएँ, सामने इमारत नज़र आती है। यह चालीस लकड़ी खम्भों पर खड़ा एक विशाल बरामदा है जिसकी छत पर चित्रकारी की गई है। विशाल बरामदे के पीछे बड़े–बड़े हॉल और कमरे हैं। जिनकी दीवारों पर शाह अब्बास सफ़वी के युग के महत्त्वपूर्ण युद्धों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं के चित्र उकेरे गए हैं। इन्हें देखना बहुत रोचक है क्योंकि यह जीता–जागता इतिहास है, वास्तविक पात्र है, ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। सामन्तों के साथ गायक, नर्तकियाँ, वाद्य बजाने वाले और नौकर–चाकर सभी का चित्रण किया गया है। यहीं मैंने एक चित्र में मुगल सम्राट हुमायूँ को भी देखा। चेहेल सुतून देखने के बाद दो संग्रहालय देखे और शाम होते–होते मैं अपनी प्रिय जगह यानी सड़क पर पहुँच गया।

पुराने इस्फ़हान की सड़कें सीधी हैं। जाने और आने के लिए सड़क का विभाजन बीच में पार्क बनाकर किया गया है। दुकानें सामने फुटपाथ पर हैं जहाँ हरे–भरे पेड़ों का सिलसिला दुकानों के साथ–साथ जारी रहता है। चौराहों पर पार्क हैं। आमतौर पर खूबसूरत हैं। लोगों के बैठने के लिए अच्छा इन्तजाम है। मैं एक मुख्य सड़क पर टहलने लगा। रात घिर आई थी। सड़कों पर कारों की संख्या बढ़ गई थी। चहल–पहल ज्यादा थी। एक दुकान से कुछ खाना खरीदा और पार्क में बैठकर खा लिया।

होटल के कमरे में आया तो देखा पाँच खाली बेडों में से तीन पर दो जापानी और एक यूरोपीय पर्यटक जमे हुए हैं। दो बेड अब भी खाली थे। मैं सोने की तैयारी कर ही रहा था कि एक जापानी लड़का और एक लड़की कमरे में आ गए। मुझे पक्का यक़ीन था कि पुरुषों की 'डारमेट्री' में लड़कियाँ नहीं रह सकतीं। सोचा यह लड़की अलग किसी लेडीज डारमेट्री में रहेगी और यहाँ अपने मित्र के साथ किसी काम से आ गई होगी; चली जाएगी। पर जल्दी ही समझ में आ गया कि लड़की यहीं इसी कमरे में यानी पाँच पुरुषों के साथ रहेगी। लड़की ने एक बेड पर अपना स्लीपिंग बैग फैला दिया था। कपड़े ठीक कर रही थी। छोटी–सी सफ़री घड़ी निकालकर अपनी मेज पर रख दी थी। यह सोचकर कुछ अजीब और नया–सा लगा कि ईरानी जैसे कट्टर इस्लामी समाज में यह कैसे सम्भव है। पर पैसा जो न कराए वह कम है।

रात में एक मद्धिम सी बत्ती जल रही थी लेकिन उसकी रौशनी में, जब आँख खुलती थी तो बिस्तर पर लेटी लड़की नज़र आ जाती थी। उसके काले बाल कभी फैले हुए नज़र आते थे, कभी उकसा सफेद हाथ निकला हुआ दिखाई देता था, कभी गुड़मुड़ाई सी दिखाई पड़ती थी और कभी अपने एक हाथ को तकिया बनाए नज़र आती थी। धीरे–धीरे थकान और रात के सन्नाटे ने अपना काम दिखाया और कमरे में साँसों की आवाज के अलावा सब कुछ शांत हो गया। यह सोचते हुए सो गया कि यह घटना अगर पच्चीस–तीस साल पहले घटी होती जो जरूर परेशानी होती।

सुबह आँख जल्दी खुल गई। तैयार होकर बाहर निकल आया। सोचा कहीं चाय पी ली जाए। दुकानें बन्द थीं। अचानक एक रेस्तराँनुमा दुकान खुली नज़र आई। अन्दर दो आदमी बैठे थे। शायद यह चाय की दुकान नहीं बल्कि रोटी की दुकान थी। पर सोचा चलों पूछ लेते हैं। चाय मिल जाए तो अच्छा ही है। दरवाजे पर खड़े होकर पूछा तो एक आदमी ने मना कर दिया। मैं जाने ही वाला था कि दोनों ने इशारा करके मुझे अन्दर बुला लिया। उन्हें शायद यह जानने की रुचि हो गई थी कि मैं कौन हूँ। कहाँ से आया हूँ ?

रोटी की दुकान में बैठे ये दोनों लोग बावर्ची किस्म के लग रहे थे। उनके सामने चाय चढ़ी हुई थी। एक ने चाय निकालकर मुझे दी और शक्कर के टुकड़ों की तरफ इशारा कर दिया। कुछ टूटी–फूटी बात होने लगी। मैंने अपनी पुस्तिका दी। उसमें परिचय पढ़कर दोनों खुश हुए और फिर कहानियाँ पढ़ने लगे। इस पुस्तिका की कहानियों में से एक की 'पंच लाइन' है कि आज 'आदमी बन्दर है और बन्दर आदमी है।' यह कहानी पढ़कर एक बावर्ची काफी नाराज़ हो गया। उसने काफी कड़ी आवाज़ में मुझसे पूछा कि क्या वह मुझे बन्दर दिखाई पड़ता है ? मैं सवाल थोड़ा–थोड़ा समझ पाया। उसने फिर कुछ और ज्यादा गुस्से में पूछा कि क्या मैं उसे बन्दर समझता हूँ ? अब मैं सब कुछ समझ गया। डारविन का सिद्धान्त और मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में इस्लामी धारणा के अन्तर्गत वह नाराज़ हो रहा था। मैंने उससे कहा कि मैं उसे बन्दर नहीं इंसान मानता हूँ। इस पर भी वह सन्तुष्ट न हुआ और बोला–'मेरे दो आँखें, नाक, कान हैं, मेरा चेहरा आदमी जैसा है। क्या मैं तुम्हें बन्दर लगता हूँ ?

मैंने उससे माफी माँगी और कहा कि वह ठीक कहता है। तब वह बोला कि फिर मैंने यह क्यों लिखा कि आदमी

बन्दर है और बन्दर आदमी है। फारसी भाषा में उसे यह समझाना मेरे लिए असम्भव था। मैंने फिर माफी माँगी और चाय के पैसे पूछे। उसने कहा कि पैसा नहीं लेगा। मैं जान बचाकर बाहर भागा और तय किया कि कहानियों की पुस्तिका देकर परिचय प्राप्त करने का काम मुसीबत में भी डाल सकता है।

नदियों पर सुन्दर पुल बनाना मध्यकाल में एक चुनौती था। इस्फ़हान अपने सुन्दर पुलों के लिए भी जाना जाता है। मैं पूछता–पाछता मारान पुल तक पहुँच गया। ज़्यानदेह नदी पर सोलहवीं शताब्दी का पुल स्थापत्यकला का बेमिसाल नमूना है। छोटे–छोटे दर बनाकर इस पुल को जोड़ा गया। ट्रैफिक के लिए बन्द इस पुल पर बस पैदल चला जा सकता है।

मारान पुल पार करके शहर के दूसरे हिस्से में आ गया जो एक प्रकार से आधुनिक शहर है। नदी के किनारे बने विशाल पार्क में घूमते हुए देखा कि एक पर्यटक अपने स्लीपिंग बैग में पेड़ के नीचे सो रहा है। यह देखकर मजा आया। इसलिए कि जब दो डॉलर में रात बिता रहा था तो सोच रहा था कि यार बड़े सस्ते में रात काट दी। लेकिन सुबह तड़के अमीर कबीर होटल के 'कोर्ट यार्ड' में देखा था कि साइकिल सवार पर्यटकों की साइकिलें कोर्ट यार्ड (आँगन) में खड़ी थीं और वे खुले आसमान के नीचे अपने स्लीपिंग बैगों में सो रहे हैं। मैंने सोचा था कि इन लोगों ने मुझसे भी कम पैसे में रात बिताई होगी। यहाँ पार्क में एक पर्यटक को पेड़ के नीचे सोता देखा तो यह सोचकर हँसी आई कि इस पट्ठे ने बिना पैसा खर्च किए ही रात बिता दी। याद आया, किसी पर्यटक ने लिखा है कि घूमने के लिए पैसा नहीं बल्कि इच्छाशक्ति चाहिए।

इस्फ़हान की सड़कों पर ही मेरी मुलाकात हिन्दी सिनेमा जगत के सितारों से हुई थी। पोस्टर बेचने वाली एक दुकान पर शाहरुख खान, ऐश्वर्या राय, सनी देओल और पता नहीं जाने कितने हिन्दी फिल्मों के अभिनेताओं के पोस्टर बिक रहे थे। इसके साथ–साथ कृष्ण भगवान की बाल लीला से सम्बन्धित चित्र भी लगे थे। ये तय है कि हिन्दी फिल्मों ने ईरान के बाजार पर कब्जा किया हुआ है। नाइट सर्विस बसों में हिन्दी फिल्में चलती हैं। हर शहर में हिन्दी फिल्मों की सी. डी. मिल जाती हैं। हर फारसी फिल्मी पत्रिका में बॉलीवुड की खबरें, तस्वीरें छपती हैं। लोग हिन्दी फिल्मों से न सिर्फ पूरी तरह परिचित हैं बल्कि पसन्द करते हैं। इस्फ़हान की सड़क पर हिन्दी फिल्मों के अभिनेताओं की तस्वीर बेचने वाले से बातचीत करने की कोशिश करता रहा। उसकी तस्वीर खींची और उसका पता लिया। वापस होटल आया तो होटल के मालिक ने कहा कि उनकी पत्नी हिन्दी फिल्मों की रसिया है और क्या यह नहीं हो सकता कि वे भारत से हिन्दी फिल्मों की सी.डी. मँगा सकें।

हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता के कई कारण हैं। पहला तो यह कि भरतीय सामाजिक मूल्य और ईरानी सामाजिक मूल्यों में बड़ी समानता है। परिवार का जो महत्त्व हमारे समाज में है, बड़ों की इज्जत करने की परिपाटी जो यहाँ है, विवाह की जो जटिलताएँ यहाँ हैं वे सब ईरानी समाज में भी हैं और इस पर आधारित कथानक उन्हें पसन्द आते हैं। हॉलीवुड उन्हें दूर लगता है। बॉलीवुड करीब लगता है। अपनी पूरी यात्रा के दौरान मुझे लगातार ऐसे लोग मिलते रहे जिन्होंने भारत का नाम आते ही हिन्दी फिल्मों के किसी एक्टर का नाम लिया या किसी फिल्म का उल्लेख किया। इस्फ़हान की सड़क पर ही मुझे एक दिलचस्प फिल्मी पत्रिका 'समीन' मिली जो पूरी 'बॉलीवुड' सिनेमा को समर्पित पत्रिका है। इस पत्रिका में हिन्दी फिल्मों के समाचारों के अलावा हिन्दी–फारसी फिल्मी शब्दावली का छोटा शब्दकोश छापा गया था। ईरानियों को यह बताया गया था कि हिन्दी फिल्में फारसी में डब किए बिना भी देखी जा सकती हैं क्योंकि हिन्दी समझना बहुत सरल है। पत्रिका देखकर आश्चर्य हुआ और सोचा कि हिन्दी प्रचार के इस स्वरूप के बारे में हमारे यहाँ कितने लोग जानते हैं ? और हम ईरानियों की हिन्दी में रुचि के लिए क्या कर रहे हैं ? 'समीन' में हिन्दी फिल्मों के गीतों का मूल पाठ और उसका अनुवाद छापा गया था ताकि ईरानी दर्शक गाने भी समझ सकें। 'समीन' के अलावा फारसी भाषा की कोई ऐसी फिल्मी पत्रिका या अख़बार नहीं देखा जिसमें हिन्दी फिल्मों पर समाचार और अभिनेताओं के चित्र न हों। मुख्य पृष्ठ पर छह कॉलम में शाहरुख खान के चित्र देखकर लगा कि वहाँ कम से कम हमारे फिल्म उद्योग ने तो अपनी उपस्थिति बनाई हुई है।

दु:ख की बात यह है कि ईरान में हिन्दी फिल्मों का पूरा व्यापार गैर कानूनी है और हिन्दी सिनेमा जगत को उससे एक पैसे का लाभ नहीं होता। करोड़ों रुपये की सी.डी. दुबई की ब्लैक मार्केट से ईरान आ जाती हैं और घर–घर पहुँच जाती हैं। फिल्मों के निर्माता कुछ नहीं कर सकते क्योंकि यह भारत सरकार के अधिकार क्षेत्र का मामला है। इस बारे में तेहरान के भारतीय राजदूतावास के एक अधिकारी से बात हुई तो उन्होंने बताया कि ईरान ने कापी राइट सम्बन्धी किसी अन्तर्राष्ट्रीय गठबंधन पर हस्तक्षर नहीं किए हैं इस कारण कापी राइट का मसला ही नहीं उठाया जा सकता। अब सोचने की बात यह है कि भारत और ईरान के राजनयिक सम्बन्ध तो ठीक ही हैं। इस सम्बन्ध में क्या कोई द्विपक्षीय समझौता हो सकता है ? अगर यह हो जाता है तो ईरान के बाजार भारतीय फिल्म जगत के लिए खुल जाएंगे। इसके अलावा यह भी सोचने वाली बात है कि ईरानी जनता की हिन्दी फिल्मों में गहरी रुचि के मद्देनज़र क्या हम कुछ ऐसी नीतियाँ और कार्यक्रम बना सकते हैं जिसका दोनों देशों को लाभ हो ? उदाहरण के लिए तेहरान या ईरान के अन्य शहरों में हिन्दी फिल्म समारोह आयोजित किए जा सकते हैं। हिन्दी फिल्मों को फारसी में डब करने का काम किया जा सकता है और भी इस तरह की तमाम योजनाएँ सम्भव हैं।

iepn Lefr 0;k[;ku

प्रो. नामवर सिंह*

संयोग से मेरी शिक्षा जहाँ हुई उदय प्रताप कॉलेज, वह संस्था लमही से एक मील की दूरी पर है और आमतौर से सारनाथ जाते हुए जब मैं छात्र था तो लमही होते हुए सारनाथ जाया करता था और पहला ठिकाना लमही हुआ करता था। यह घटना 1940–41 की है। प्रेमचंद को देखने का सौभाग्य तो नहीं प्राप्त हो सका लेकिन अम्मा को देखा और हम उन्हें अम्मा ही कहते थे शिवरानी देवी को। और सरस्वती प्रेस जो गोदौलिया चौराहे पर है वह हमारा अड्डा हुआ करता था। अमृत वहीं रहते थे, श्रीपत शुरू में थे, बाद में वे चले गए थे इलाहाबाद। उनके बाद में अमृत भी चले गये। साहित्य से जुड़े होने के नाते हम लोग आमतौर से सरस्वती प्रेस में मिला करते थे और अम्मा के यहाँ जाया करते थे। अम्मा ऊपर छत पर रहती थीं। छत पर कमरा था और लमही से अम्मा के यहाँ आमतौर से मौसम में गन्ने आया करते थे, गन्ने का रस आया करता था और अम्मा हमें गन्ने चूसने को देती थीं। उसके साथ ही गन्ने का रस भी पिलाती थीं। वे पुराने दिन, प्रेमचंद की बात उठी है तो याद आते हैं। अम्मा, श्रीपत, अमृत, सरस्वती प्रेस और वे प्रसंग। जहाँ तक प्रेमचंद के साहित्य का सवाल है। मेरी एक किताब है, आशीष त्रिपाठी ने जो किताबें संकलित की हैं उनमें से एक किताब है 'प्रेमचंद और भारतीय साहित्य'। इसका प्रकाशन 2010 में हुआ और इसमें 19 लेख हैं। उनमें से दो लेखों में से कुछ अंशों पर संक्षेप में आपसे मैं चर्चा करूँगा। अंतिम दोनों भाषण हैं। एक है 'गोदान को फिर से पढ़ते हुए' और एक है 'दलित साहित्य और प्रेमचंद'। चूँकि भाई जयप्रकाश कर्दम ने दलित साहित्य से शुरू किया है इसलिए उसी के बारे में दो–एक शब्द मैं कहूँगा। यह विचित्र बात है, एक कहावत कहते हैं हमारे यहाँ 'जेही खातिर चोरी करे, उहे कहे चोरवा'। प्रेमचंद ने दलितों के बारे में लिखकर के सवर्णों के बीच बदनामी हासिल की और वही दलित लोग, दलित लोगों में से अगर सभी ने नहीं तो कम से कम एक ने पूरी की पूरी किताब लिखी। भाई जयप्रकाश कर्दम डॉ. धर्मवीर को जानते होंगे। डॉ. धर्मवीर ने 'कफन' कहानी की व्याख्या की है। जानते हैं उन्होंने क्या कहा है; प्रेमचंद सामंत का मुंशी। किस राजा के, किस जमींदार के वह मुंशी थे ? कुछ पता लगा लेते तो पता चलता, प्रेमचंद तो कायदे से कहिये कि मुंशी तो थे लेकिन वे हंस के संपादक थे। जो तमाम लोग कलम चलाने वाले थे हल तो उन्होंने न चलाया न चलवाया। हंस में यह सही है कि प्रेमचंद मुंशी प्रेमचंद कहे जाते थे इसलिए आप उनको मुंशी इंतिखाब लगाना बहुत जरूरी समझें तो रखें। लेकिन उन्होंने अद्‌भुत व्याख्या की है। उसका एक नमूना मैं, केवल एक नमूना पढ़ता हूँ कि दलित लोग कैसे प्रेमचंद को पढ़ते हैं और बाकी दूसरे साहित्य को भी पढ़ते हैं। इसको सुपाठ कहें कि कुपाठ कहें। कर्दम ने पढ़ा होगा उनका लेख। धर्मवीर ने 'प्रेमचंद सामंत का मुंशी' में 'कफन' कहानी की व्याख्या की है। अब ये कहें कि 'मारेसि मोंहिं कुठाँव'। जो मर गयी औरत उसके बारे में टिप्पणी करते हैं कि अपनी गर्भवती बहू के मरने के बाद घीसू माधव बैठकर मयखाने में शराब पी रहे हैं। उनकी बातचीत होती है। वे कहते हैं कि "अपनी गर्भवती बहू बुधिया को प्रसव–पीड़ा में इसलिए मर जाने देते हैं कि उन्हे पूरा यकीन है कि उसके पेट में किसी गैर दलित बाँभन या ठाकुर का बच्चा पल रहा है।" यह कहाँ से उन्होंने पता लगा लिया। उस कहानी में, यह कैसे मालूम हुआ। ये बड़ी खोज की बात है। इसलिए मर जाने दिया ? मरने के कारण हैं उसमें और उस कहानी में मौजूद हैं। प्रेमचंद का कुपाठ करने वाले लोग, मुझे शक होता है कभी–कभी कि वे बाबा साहेब अम्बेडकर का भी कुपाठ करते हैं। गाँधीजी से समझौता हुआ था, उस कहानी पर मैं कोई टिप्पणी नहीं करूँगा, विषयांतर होगा। लेकिन मेरा यही कहना है कि कम से कम राजनीतिक दुनिया के बारे में जो पाठ करें उस पर मुझे कोई टिप्पणी नहीं करनी है, लेकिन साहित्य का जो मंदिर है पवित्र है, कम से कम उसमें वह पाठ करें जो पाठ बेहतर हो। इतने सबजेक्टिव न हो जायें। और 'प्रेमचंद सामंत का मुंशी' पढ़ने के बाद फिर मेरी इच्छा नहीं हुई कि मैं धर्मवीर को और पढ़ूँ। यह उनको इसलिए दिखाई पड़ा था कि शायद उन्होंने एक आत्मकथा लिखी है, सुनी है, मेरी पढ़ी नहीं है। वह आत्मकथा है 'मेरी पत्नी और भेड़िया'। तुम्हारी पत्नी ने तुम्हारे साथ दगा किया तो ठीक है, लेकिन हर औरत को तुम समझो कि वही है, यह निहायत सब्जेक्टिविज्म है। साहित्य का मंदिर बड़ा पवित्र मंदिर होता है। यह सरस्वती का मंदिर है। इसमें आप जायें तो अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर, अपनी ग्रंथियों को छोड़ करके देखें कि आपको क्या मिलता है। इसलिए मैं नहीं जानता कि भाई कर्दम जी कितने सहमत हैं धर्मवीर जी से। दलित साहित्यकार गाँधी जी पर उँगली उठा सकते हैं तो प्रेमचंद किस खेत की मूली हैं। गाँधी जी ने स्वयं कांग्रेस में रहते हुए दलितों के अधिकारों के लिए प्रयास किया। यह तो

व्याख्यानकर्ता प्रसिद्ध आलोचक और जेएनयू में प्रोफेसर एमिरेटस हैं।

इतिहास का तथ्य है कि कांग्रेस में लोग अम्बेडकर को पसंद नहीं करते थे। गाँधी जी के कहने पर उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। जवाहरलाल ने कभी नहीं कहा कि उसी को ला मिनिस्टर बनाओ। गाँधीजी के सुझाव पर कहा गया कि संविधान सभा के चेयरमैन होंगे डॉ. अम्बेडकर, वही लिखेंगे संविधान। गाँधी जी तो तथ्य हैं, इतिहास के इसलिए यह और बात है कि अंत में अम्बेडकर को जवाहरलाल के मंत्रिमंडल से हटना पड़ा, लेकिन कम से कम गाँधी अम्बेडकर के महत्त्व को समझते थे। अपने जीवन में जितना गाँधी जी ने निभाया किसी अन्य ने नहीं। उनके आश्रम में कांग्रेसी लोग जाते थे। वहाँ एक कामता प्रसाद विद्यार्थी स्वाधीनता संग्राम के सेनानी थे। हम उनके यहाँ जाते थे। हमारे घर वाले कहते थे उनके घर में खाना–पीना; पानी, बर्तन सब कुछ हरिजन किया करते थे। बड़े पिताजी और माँ कहती थीं कि विद्यार्थी के यहाँ जाना तो पानी मत पीना, क्योंकि वहाँ चमार पानी पिलाता है। गाँधी जी अम्बेडकर के महत्त्व को बहुत समझते थे। नेहरू समझें या न समझें, बाकी कांग्रेसी समझें या न समझें। इसलिए मैंने जानबूझकर के चुना कि प्रेमचंद के यहाँ दलितों के बारे में एक लम्बा सिलसिला चलता है, विकास होता है और अंतिम जो कहानी है उसका बार–बार जिक्र किया गया। रंगभूमि उपन्यास उस समय छपा था जब स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई तीव्रता पर थी – 1923–24 में। रंगभूमि का जो नायक है सूरदास। मैं समझता हूँ समूचे हिंदी साहित्य में वह अंधा लाठी लेकर चलने वाला और इत्तिफाक से उन्हीं के गाँव के पास का है। जगह उन्होंने जो ली है वह लमही थी। लमही के पास रहने वाला सूरदास और उस सूरदास की समस्या दलितोद्धार की नहीं है। राष्ट्रीय मुक्ति में गाँधी जी के आह्वान पर भाग लेने का सवाल है। मंदिर में कीर्तन होता है तो उसमें औरों के साथ सूरदास भी शामिल होता है और कीर्तन के बाद सहभोज में सूरदास शामिल होता है। ये प्रेमचंद लिखते हैं। मैं समझता हूँ प्रेमचंद के हीरो होंगे 'होरी महतो' लेकिन वह अंधा लकड़ी लेकर के चलने वाला पिसनहरिया के पास का रहने वाला था। प्रेमचंद का अगर कोई हीरो अंधा भिखारी और चुनौती देता है वह कोठी को, महलों को, पूरी बादशाहत को चुनौती देता है। ऐसा ताकतवर हीरो पूरे हिंदी साहित्य में नहीं है। यह 1924 में प्रेमचंद दलित की शक्ति को दिखाते हैं। उस पर इल्जाम लगते हैं तरह–तरह के उसके यहाँ जो औरत रहती है उसे लेकर लेकिन वह अडिग खड़ा हुआ लाठी लिये हुए जैसे दूसरे रूप में स्वयं गाँधी हों; ऐसा मालूम होता है। यदि हिंदी उपन्यास में गाँधी को देखना हो तो प्रेमचंद के सूरदास को जानिए। इसके बाद जैसे–जैसे स्वाधीनता आंदोलन बढ़ता है और उसमें दलितों की भागीदारी बढ़ती है। कांग्रेस का विस्तार होता है। ये दौर है 1930–31 के आस–पास का। और उस समय उन्होंने 'कर्मभूमि' नाम का उपन्यास लिखा। उस कर्मभूमि में सवाल बड़ा हुआ हरिजनों का मंदिर प्रवेश। मंदिर प्रवेश के लिए जा रहे हरिजनों पर भजन–कीर्तन करने वाले ब्रह्मचारी उठे और वह पिटाई करने लगे। उपन्यास का नायक अमरकांत है। वह हरिजन नहीं है। अमरकांत घोषणा करते हैं कि मंदिर का द्वार दलितों के लिए खुल गया है, और अब वे चाहें तो मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं। प्रेमचंद की टिप्पणी है कि "उस दिन पुजारी बहुत खुश था क्योंकि चढ़ावा बहुत मिला"। मंदिर प्रवेश हरिजनों को जो कराया उसमें भी मतलब है स्वार्थ का। यह प्रेमचंद जैसा आदमी तब–देख रहा है। कर्मभूमि में, 1931 में जब मंदिर का द्वार दलितों के लिए खुल गया है और अब चाहें तो मंदिर प्रवेश कर सकते हैं पर जो टिप्पणी करते हैं कि उस दिन पुजारी बहुत खुश था क्योंकि चढ़ावा बहुत ज्यादा चढ़ा था। तो आप लोग चढ़ावा चढ़ाते हैं। कांग्रेस पार्टी की तरफ से जो मिल रहा है, आप लोगों से वही काम करवा रही है। ये प्रेमचंद 1931 में कह रहे हैं। तीसरा उपन्यास है 'कायाकल्प'। नाम से मालूम होता है कि दूर–दूर तक दलितों से इसका क्या संबंध है। कायाकल्प में वे दलितों को मजदूर के रूप में या किसान के रूप में देखते हैं। तब तक प्रेमचंद समझ गये थे कि दलितों पर एहसान की जरूरत नहीं है। प्रेमचंद का मत गाँधी जी से अलग था। वे समझ गये थे कि जब तक जात–पाँत की व्यवस्था नहीं तोड़ी जायेगी तब तक दलितों की मुक्ति नहीं होगी। बुनियादी चीज है, उनको रियायत देना नहीं, उनकी सुविधा के लिए कुछ टुकड़े डाल देना नहीं। जब तक कि जात–पाँत की व्यवस्था नहीं तोड़ी जायेगी तब तक दलितों की मुक्ति नहीं होगी। ये प्रेमचंद समझते थे। उनका अंतिम उपन्यास है गोदान। गोदान में पंडित मातादीन और सिलिया चमारिन का संबंध दिखाया गया है। सिलिया गर्भवती होती है और मातादीन की पिटाई होती है। मातादीन अंत में कहता है कि 'मैं ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ' यह प्रेमचंद इस कहानी में दिखाते हैं। गोदान की कहानी में।

प्रेमचंद ने आखिरी दिनों में जो कहानियाँ लिखीं उनमें सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम हैं। सत्यजीत रे ने फिल्म भी बनाई थी, सद्गति फिल्म सत्यजीत रे की बनाई हुई थी। सद्गति में, इस कहानी में उनकी कला कैसे विकसित होती है देखिये। सद्गति में दुक्खी लकड़ी की गाँठ तोड़ रहा है। गाँठ सिम्बल है, प्रतीक है और गाँठ टूट नहीं रही है, वह चला रहा है कुल्हाड़ी। दुक्खी चमार है। इसलिए जो दलित आंदोलन कर रहे हैं यह न समझे कि दुक्खी सिर्फ गाँठ तोड़ रहा है। यह वर्णव्यवस्था भारत की गाँठ है लकड़ी की गाँठ नहीं, गाँठ टूट नहीं रही है और अंत में बेहोश हो जाता है और मर जाता है। यह गाँठ जो है जाति व्यवस्था है। 'सद्गति' पुरोहित के अत्याचार की कहानी है। लेकिन 'ठाकुर का कुँआ' राजपूत जमींदार के अत्याचार की कहानी है। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों कहानियों को साथ मिला कर पढ़ना चाहिए। एक ठाकुर के, जमींदार के अत्याचार की कहानी है।

दूसरी विरोध की। ठाकुर का कुआँ में 'जोखू' बीमार पड़ा है और 'गंगी' ठाकुर के कुएँ पर पानी निकाल रही है। सहसा ठाकुर ने दरवाजा खोला जैसे शेर का मुँह खुला हो, दरवाजा नहीं, प्रेमचंद कहते हैं। गंगी के हाथ से डोर छूट गयी। भागकर घर आई तो देखा – जोखू वही सड़ा हुआ पानी पी रहा है। ये हैं प्रेमचंद। तीसरी कहानी है 'दूध का दाम'। जमींदार की बेटियों पर बेटियाँ हो रही हैं। संजोग से एक बेटा हुआ। नार काटने के लिए भंगिन को बुलाया गया। भंगिन को भी एक बेटा था मंगल। मंगल की माँ सहसा मर गयी। मंगल जमींदार के घर में टुकड़ों पर पलता था। अंत में उसे एक दिन मार के निकाल दिया गया। वह एक आवारा कुत्ते के साथ बैठकर बतिया रहा था। दोनों की बातचीत होती है, कुत्ते में और उस बेटे में – 'लात मारी रोटियाँ भी न मिलती तो क्या करता ?' लात मारी रोटियाँ। टामी दुम हिलाता है। वह कहता है "सुरेश को अम्मा ने पाला था। कहते हैं कि दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का दाम मिल रहा है।" टामी ने फिर दुम हिलायी। इन तीनों दलित कहानियों के साथ प्रेमचंद की यथार्थवादी कला अपने शिखर पर पहुँच गयी थी। अंतिम दृष्टि में मेरी प्रेमचंद की ये कथाकृतियाँ उपन्यास और कहानियाँ सभी तथाकथित दलित साहित्य के लिए चुनौती हैं। लिखें दलित साहित्य। दलित अच्छी कहानियाँ लिखकर के दिखायें। क्योंकि 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर'। ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान से लड़ाई होती है। लाठी, डंडे, तलवार, बंदूक से नहीं होती है। अब तक जितने दलित लोगों ने लिखा है। उन्होंने अच्छी कहानियाँ कौन–कौन सी लिखी हैं ? उन अच्छी कहानियों को चुनौती के रूप में आप दिखाइये।

केवल दलितों के लिए सहानुभूति या दलितों के लिए बोल जाने से कुछ नहीं होता। मजदूरों के हक के लिए किसी जमाने में बहुत कविताएँ लिखी गयी थीं, दो कौड़ी की अब कोई नहीं पढ़ता उन्हें। दलितों पर लिखी हुई दलित कथाकारों की रचनाओं से कलात्मक रूप से चुनौती दीजिए। साहित्य के क्षेत्र में पूर्व साहित्य से अच्छी कहानियाँ आप लिखें। साबित करें और दलित के बारे में प्रेमचंद से बेहतर कहानी लिखिये, बेहतर उपन्यास लिखिये। इसे निराला ने कहा है – 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर'। आराधन का उत्तर आराधन से होता है, लाठी डंडों से नहीं होता है। तो इसलिए सवाल सिर्फ विमर्श का नहीं, दलित विमर्श बहुत हो रहा है। सवाल सर्जना का है। क्रिएटीविटी का। क्रिएटीविटी–चुनौती दो कि ऐसा कोई लिखकर दिखाए। दलित विमर्श तो बहुत हो चुका स्वयं दलितों द्वारा लिखा साहित्य सृजन कहाँ है, ये पक्ष मैं छोड़े जा रहा हूँ। उनके लिए भी जो दलित नहीं हैं और उनके लिए भी जो स्वयं दलित हैं। कपोल, कपोल से मसला जाता है। कपोल आटा की तरह गूँथा नहीं जाता है। किसी का कपोल आप मसल दें और उसको दर्द होने लगे ... कपोल कपोल से मसला जाता है। साहित्य की लड़ाई साहित्य सृजन से होती है।

प्रस्तुति : दीपशिखा सिंह

oj;ke flag dh dfork,¡*

ij D;k lpeqp

तब हमें ज़रूरी लगा था
चलना और चलते रहना
परवाह नहीं थी
कहाँ ले जाता है यह रास्ता

रास्ता है तो कहीं पहुँचेगा ही
हमने अधिक सोचना ज़रूरी नहीं समझा
हम चल रहे हैं
हमें यही काफी लगा
आस्थाओं के उस दौर में
विश्वास था हमें
जो आगे चल रहा है ठीक ले जा रहा होगा।

आगे चलने वाला
आगे चल रहे के पीछे चल रहा था
हमारी ही तरह की आस्थाओं के साथ।

प्रश्न करना यों प्रतिबंधित नहीं था
पर हमने पूछे ही नहीं
संदेह हो सकता था
कि हमें पूरा विश्वास नहीं।
संदेह विश्वास के शत्रु थे

और शत्रुओं की कमी न थी
कहना कठिन था
इस संसार में शत्रु अधिक हैं या खटमल।

पर आज हम जहाँ पहुँचे
विश्वास नहीं होता हमें यही रास्ता यहाँ लाया है
वही चेहरे हैं, वही चीजें हैं और वही बस कुछ
सिर्फ अप्रासंगिक हो गए लगते हैं कुछ शब्द
जैसे शोषण, अन्याय, असमानता ...

पर क्या सचमुच ?

fe=foghu gks tkÅaxk tc

एक दिन मैं देखूँगा
कि मैं मित्रविहीन हो गया हूँ पूरी तरह
जो आज मित्र हैं
नज़र आएंगे स्वार्थों के घिनौने पुतले
व्यापारी जेबकतरे
मुझे अच्छा नहीं लगेगा उनका बात करने का तरीका
अनौपचारिक संबोधन भी गहरा षड्यंत्र लगेगा।

भाग खड़ा हूँगा हर तरह के
स्नेह की गंध छोड़ते शब्दों से।

खाने पर बुलाएगा पुराना दोस्त
मुझे लगेगा ज़रूर अपने बेटे की सिफारिश करने के
लिए कहेगा
भेंट करेगा मफलर या शाल।

अन्याय की बात करेगा जो दोस्त
मुझे लगेगा जरूर चिल्ला रहा है
अपना हिस्सा न मिलने पर।

सुनाने लगेगा कवि मित्र
अपनी हाल ही में लिखी कोई कविता
मुझे लगेगा जिस पर उसे स्वयं विश्वास नहीं
चाहता है मैं उस पर विश्वास करूँ।

*कवि रूसी अध्ययन केन्द्र, जेएनयू से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त।

बेटे के मेडिकल में दाखिला मिलने की खुशी में
दावत पर बुलाएगा दोस्त
मुझे लगेगा – स्साला मुझे बताना चाहता है
छः बरस तक घसीट ले जा सकूँ यह शरीर
तो उसके बेटे के क्लीनिक में
शरण मिल जाएगी मेरी अस्वस्थ काया को
सस्ते में इलाज करा देगा
या बताना चाहता है
बेटी के लिए दूर नहीं
अपने ही शहर में वर मिल जायेगा
इसके लिए ठीक से बचत करना
शुरू करूँ अभी से।

शुरू करना होगा खोल बनाना अभी से
घुस जाऊँगा उसके भीतर
बाहर मित्रताओं की दुनिया होगी
भीतर सुरक्षा का संसार।

Hk[k

भूख ने कहा, बार–बार कहा
तुम वही हो जो कुत्ता है, जो कव्वा है,
जो भेड़िया है
जो ईदी अमीन है जो राष्ट्रपति बुश है।
गंवार से लेकर विद्वानों तक
गांव से लेकर राजधानियों तक
ढाबे से लेकर पांच सितारा होटल तक
देख आने के बाद भी
मैं भूख को समझा नहीं सका
कि मैं वह नहीं हूँ
जो वह सोचती है।
सोचता हूँ क्या भूख की भी सोच होती है
क्या दसवीं शताब्दी की भूख
बीसवीं शताब्दी की भूख से भिन्न रही है
क्या अंग्रेज़ों की भूख
भारतीयों की भूख जैसी नहीं होती
क्या हर आदमी के पेट की भूख अलग–अलग होती है
क्या भूख वहीं नहीं बसती
जहाँ पहुँचते नहीं अन्न के दाने।

"मैं वो भूख नहीं हूँ जो तुम सोचते हो" –
फख्र के साथ कहती है भूख,

"और तुम्हारी सोच भी कितनी दकियानूस !
मैं भूखों के पेट में नहीं
तृप्त पेटों के दिमाग में रहती हूँ
एक महान विचार बनकर
एक उत्कृष्ट कविता बनकर।

जहाँ तक सचमुच के भूखे लोगों की बात है
तो उनका होना ज़रूरी है
उनके बिना यह दृश्य अधूरा रहता
भूखे लोग न हों तो भारत नाम का यह दृश्य
कृत्रिम और अस्वाभाविक नहीं लगेगा ?
मैं दृश्य में यथार्थ चाहती हूँ
मैं कला में यथार्थवाद की पक्षधर हूँ ..."

मैं जो अपने को कुत्ता नहीं समझता
न कव्वा, न भेड़िया,
न ईदी अमीन, न राष्ट्रपति बुश
देख रहा हूँ किस तरह
उच्चतम सोपान पर बैठे
भूख के सौंदर्य से
अभिभूत हो रहे हैं तृप्त पेट।

ehfM;k vkSj fgUnh Hkk"kk dk vUrlZEcU/k

बृजेश कुमार*

भाषा मानव जाति के विकास का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। समाचार माध्यमों में भाषा का अपना एक स्थान होता है। उसकी अपनी एक भूमिका होती है। समाज यदि परिवर्तन शील है तो भाषा भी बदलाव चाहती है। समाज के बदलते स्वरूप के कारण भाषा भी अपने स्वरूप में परिवर्तन लाती है। अनेक ऐसे शब्द जो दूसरी भाषाओं या बोलियों के हैं उन्हें अपने आप में समाहित कर लेती है। हिन्दी भाषा के विकास पर विचार करें तो कहा जा सकता है कि इसका इतिहास लगभग एक हजार वर्षों का रहा है। इस बीच यह बनती और बिगड़ती गई कबीर, रैदास, तुलसी, सूरदास इत्यादि ने भाषा के परिवर्तन शील वाले रूप पर ही बल दिया है। संचार के माध्यमों ने भी भाषा के प्राचीन से लेकर नवीन रूप देखे हैं। मीडिया चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रानिक दोनों में ही भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में भी समाचार माध्यमों के साथ हिन्दी नए–नए रूपों में प्रयोग की जाने लगी। हिन्दी ने तब हिंग्रेजी अर्थात् हिन्दी और अंगेजी के मिले–जुले शब्दों का प्रयोग करना शुरू नहीं किया था। स्वयं गाँधी जी ने भी कहा था कि अंग्रेजों से जा कर कह दो कि गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती। गाँधी अब केवल हिन्दी में बोलेंगे। तब उस समय अधिकतर मीडिया कर्मियों ने अंग्रेजी का प्रयोग अपने माध्यमों में कम करना शुरू कर दिया था। मीडिया जगत में यदि देखा जाए तो उस दौरान प्रिंट मीडिया का वर्चस्व ज्यादा था। हिन्दी भाषा का मीडिया आधार उदंत मार्तंड पत्रिका से निर्मित हुआ कहा जा सकता है।

Mk Hkxoku'kj.k Hkkj}kt d 'kCnk e – ''सच पूछे तो इसके मानक स्वरूप का विकास भी 19 वीं सदी में उदंत मार्तंड से लेकर जो पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, उन्हीं से हिन्दी का एक परिनिष्ठित स्वरूप भी स्थिर हुआ।''[1]

यह दौर वैश्वीकरण, बाज़ारवाद का दौर है। बाज़ारवाद मनुष्य के आरम्भिक क्रिया–कलापों से ही है। बाज़ार की मौजूदगी परिणामात्मक भी है और गुणात्मक भी है। बाज़ार पहले किसी एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु की विनिमय प्रणाली पर आधारित था, किन्तु आज बाज़ार आपके घर तक पहुँच गया है। बाज़ार में एक जादू रहता है जिससे एक आम आदमी भी बंध जाता है। हिन्दी भाषा का भी बाज़ारीकरण कर दिया गया है। औधोगिक पूँजीवाद ने परिवार, समुदाय और पंरम्परा को खण्डित कर दिया है। निर्णय लेने की स्वंतत्रता अब व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। बाज़ार अब तय करने लगा है कि आप कौन सी भाषा को बोलेंगे। आप अंग्रेजी भाषा में water कहेगें तो आपको दुकानदार बिसलरी की बोतल दे देगा। आप कहेगें की बिसलरी की जगह कोई दूसरा दो तो वह आप को एक्वाफाइन दे देगा। यहाँ हिन्दी भाषा गायब है। ब्राण्ड के नाम से उत्पाद बिकता है। पानी जो कि भारत में ही उपलब्ध है किन्तु वह पानी ही आपको दस गुना दाम देकर खरीदना होता है। बाज़ारीकरण के दौर में मीडिया भी बाज़ार की भाषा बोलने लगा है। कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भाषागत क्रांति ला दी है। अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी सूचना माध्यम ने भाषाओं को एक नई जगह दी है। रेडियो टेलीविज़न, फैक्स ई–मेल इत्यादि में हिन्दी में भी संचार पर्याप्त मात्रा में होने लगा है। पत्र–पत्रिकाओं चाहे वह किसी भी जगह से प्रकाशित हो रही हों उनमें अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी की पत्र–पत्रिकाएँ भी लगभग उसी मात्रा में प्रकाशित होती हैं। ई–मेल आप हिन्दी में भी लिख सकते हैं और अग्रेजी में भी लिख सकते हैं। कम्प्यूटर की भाषा शुरूआती दौर में अंग्रेजी में थी, लोगों का यह मानना था कि कम्प्यूटर ने हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का साम्राज्यवाद ला दिया है। हिन्दी भाषा का विकास रुक जाएगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हिन्दी भाषा तो और भी विस्तृत हुई है। फर्क थोड़ा यह आया है कि हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग होने लगा है। भाषाओं का प्रयोग अनाउन्समेंट चाहे वह रेलवे का हो या एयरपोर्ट का हिन्दी का प्रयोग उनमें किसी भी मात्रा में कम नहीं है। भाषायी दृष्टि से देखा जाए तो मशीनी अनुवाद भी शुरू हो गए हैं। मीडिया के क्षेत्र में तो बहुत अधिक मात्रा में भाषायी अनुवाद किए जाते हैं। हिन्दी भाषा अपने आप में परम्परागत, साहित्यिक और प्रयोजनमूलक रूप समाहित

*y[kd t,u; e 'kk/k Nk= gA

किए हुए है। हिन्दी भारत की राजभाषा है। राजभाषा होने के नाते उसका दायित्व बहुत ही बढ़ गया है। अब वह प्रशासनिक मीडिया के क्षेत्र में भी व्यवहृत (व्यवहार) की जाने लगी है। आदमी अब हिन्दी भाषा में अखबार पढ़कर अखबारी भाषा बोलने लगा है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रयोग करने लगा है। आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया में हिन्दी भाषा का प्रयोग व्यापक स्तर पर होने लगा है।

मीडिया का एक रूप सिनेमा भी है। सिनेमा ने भी हिन्दी के प्रचार–प्रचार में अहम् योगदान दिया है। हिन्दी भाषा न जानने वाले भी हिन्दी भाषा की फिल्में देखते हैं। और हिन्दी के बहुत से गाने वह गुनगुनाने लगते हैं। उदाहरणार्थ गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू, मलयालम इत्यादि भाषा–भाषी हिन्दी के फिल्मी गीत गुनगुनाते हैं। हिन्दी भाषा मीडिया से जुड़कर या यूँ कहें कि मीडिया जब से हिन्दी भाषा से जुड़ा है उसने केवल भाषा को ही नहीं बल्कि उसके साहित्यिक परिवेश को भी जीवित कर दिया है। अगर प्रेस नहीं होता तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र को कोई भी आधुनिक काल का जनक नहीं मानता। प्रेस नहीं होता तो हिन्दी की पत्र–पत्रिकाएँ अधिक मात्रा में न छप पातीं। इनके छपने के पीछे हिन्दी के साहित्यकारों का एक हिन्दी सेवी समाज भी रहा है। भारतेन्दु ने अपने समय की बहुत सी गहरी समस्याओं को अपने हिन्दी साहित्य के माध्यम से इंगित किया है। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने भारत देश के आर्थिक शोषण, राजनीतिक और धार्मिक शोषण और साहित्यिक परिवेश का विश्लेशण किया है। डॉ. स्मिता मिश्र के अनुसार – ''प्रेस के माध्यम से सबसे बड़ा काम हुआ–पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन। आधुनिक काल का साहित्य भारतेन्दु के समय से ही राष्ट्र और समाज की गहरी चिंताओं को लेकर चला।''[2]

मीडिया विशेषकर–रेडियो ने हिन्दी भाषा की बहुत सेवा की है। रेडियो ने अनपढ़ और गरीब किसान के बीच जाकर अपनी हिन्दी भाषा को जीवित रखा है। उसका प्रचार–प्रसार किया है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास इत्यादि का प्रचार रेडियो से बहुत ही तीव्र गति से होता है। टीवी भी अपने दृश्य माध्यमों से हिन्दी भाषा को विकसित कर रही है। मीडिया में बहुत से हिन्दी साहित्य पर चलचित्र बनाए गए हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मीडिया और हिन्दी भाषा का अटूट संबंध है। दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. भगवानशरण भारद्वाज, विशिष्ट साहित्यिक निबन्ध : आधुनिक मीडिया और हिन्दी भाषा का स्वरूप और संभावनाएँ, पृ. 625,
2. डॉ. स्मिता मिश्र : मीडिया और साहित्य, पृ. 74

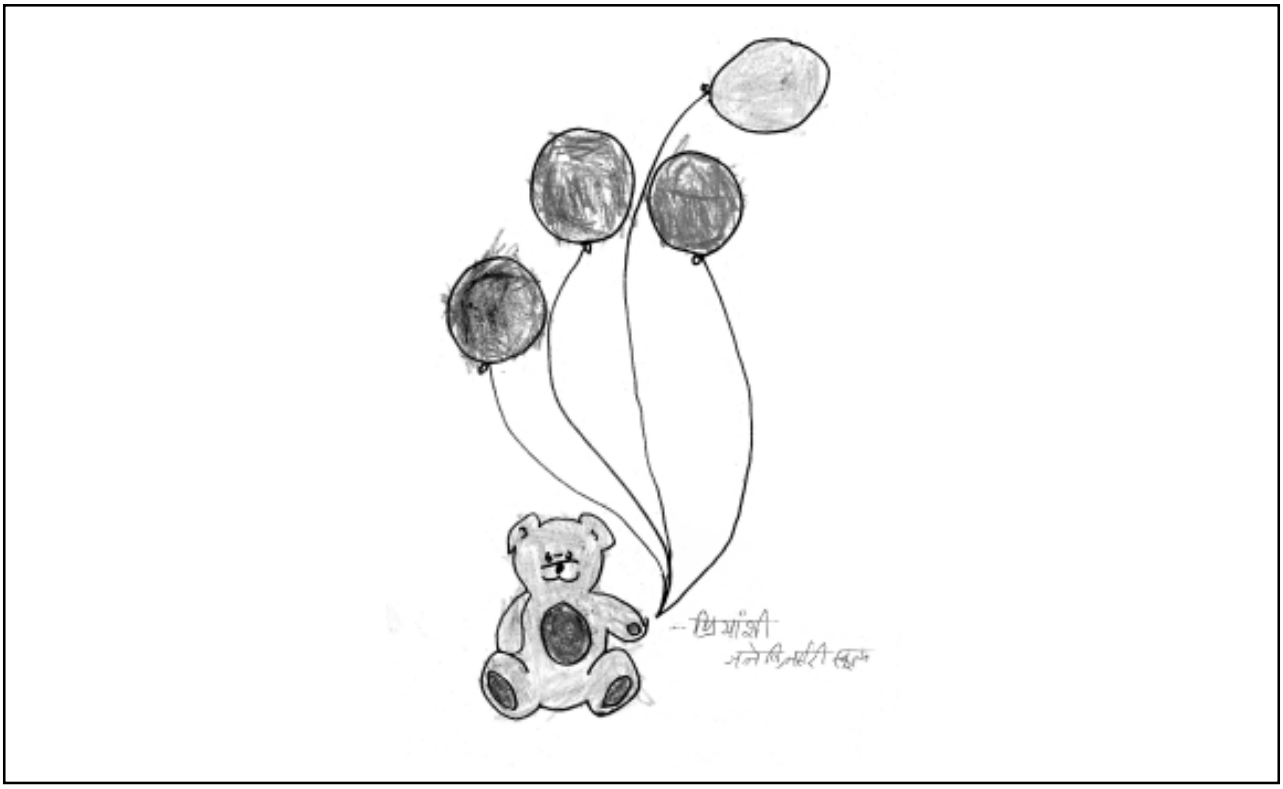

ch loh lnh esa efgyk l'kDrhdj.k

डॉ. सत्येन्द्र कुमार*

नारी समाज का एक अभिन्न अंग है। अतीत से ही नारी का समाज में सर्वोपरि स्थान रहा है तथा सुख और समृद्धि का प्रतीक माना जाता रहा है। "यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" हमारा आदर्श रहा है। यह स्थिति वर्षों तक चलती रही। लेकिन बीच में कुछ ऐसा समय आया जब मनुष्य ने स्वार्थवश नारी को भोग विलास की वस्तु मान लिया। नारी पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार किए जाने लगे। वह शोषण और यातना की शिकार होने लगी। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकी। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नारी के अतीत का गौरव पुनः लौटने लगा। नारी स्वातंत्र्य की लहर चली। समाज और कानून में नारी को पर्याप्त सम्मान एवं संरक्षण मिलने लगा। जीवन के हर क्षेत्र में नारी पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने लगी। यहाँ तक कि सत्ता में भी उसकी भागीदारी सुनिश्चित हो गई। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 1/3 स्थान आरक्षित कर दिए गए। अब तो विधान सभाओं एवं संसद में भी महिलाओं के लिए 1/3 स्थान आरक्षित किए जाने की मांग की जाने लगी है।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि जब से मानवाधिकार संरक्षण कानून बना है और राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ है, नारी की स्थिति समाज में और अधिक सुदृढ़ होने लगी है। अब महिला उत्पीड़न की घटनाओं में भी अपेक्षाकृत कमी आई है। हमारी न्यायिक व्यवस्था ने भी नारी विषयक मानवाधिकारों की समुचित सुरक्षा की है।

"मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम–1993" पारित होने के पश्चात महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। उन पर होने वाले अत्याचारों में भी कमी आयी है, यहाँ तक कि न्याय पालिका का दृष्टिकोण भी नारी हितों के पक्ष में बनने लगा है।

पुरुष प्रधान समाज में बीसवीं सदी महिलाओं के लिए मिश्रित परिणामों वाली रही। बीसवीं सदी में खास तौर से इसके उत्तरार्द्ध में एक तरफ जहाँ महिलाओं के साथ शोषण एवं अत्याचार की घटनाओं में वृद्धि हुई वहीं दूसरी तरफ महिलाओं के उत्थान एवं विकास के लिए कई कल्याणपरक कानून भी बनाए गये। न्यायिक निर्णयों की दृष्टि से भी बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध महिलाओं के लिए काफी सार्थक रहा। वैसे महिलाओं के लिए हितकर कानूनों का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी में ही हो गया था, जब सन् 1860 में भारतीय दण्ड संहिता का निर्माण हुआ था। लेकिन आगे चलकर देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार न केवल पूर्व–कानूनों में संशोधन हुए, अपितु नए–नए कानूनों का भी उद्भव हुआ।

बीसवीं सदी में बने कानूनों का आरम्भ हम भारतीय संविधान से करते हैं। 26 जनवरी, 1950 को अंगीकृत किए गए भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए कई व्यवस्थाएं की गयी हैं जिसके अन्तर्गत धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर विभेद को प्रतिषेधित किया गया है। महिलाओं की विशेष स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यह विशेष व्यवस्था की गई है।

राज्य महिलाओं के लिए विशेष कानून बना सकता है। संविधान में लोक नियोजन में भी धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग व जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया है अर्थात् पुरुष की भांति महिलाओं को भी लोक नियोजन में समान अवसर प्रदान किया गया है। विशेष बात यह है कि "समान कार्य के लिए समान वेतन" का सिद्धान्त प्रतिपादित कर महिलाओं को लोक नियोजन में संरक्षण प्रदान किया गया है।

सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए संविधान में महिलाओं के लिए एक विशेष व्यवस्था सन् 1992 में की गई, जिसके द्वारा स्वायत्तशासी एवं पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए भी विशेष आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

बीसवीं सदी में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न की घटनाएं अधिक प्रकाश में आईं, जिसमें पंजाब के पुलिस महानिदेशक के.पी.एस. गिल द्वारा वहाँ की भारतीय प्रशासनिक सेवा की एक वरिष्ठ अधिकारी श्रीमती रूपन देवल बजाज के साथ किए गए अभद्र व्यवहार को उच्चतम न्यायालय द्वारा गम्भीरता से लिया गया, इसके अतिरिक्त एक उच्च न्यायालय ने यह अनुशंसा भी की कि बलात्कार जैसे मामले की सुनवाई यथासम्भव महिला न्यायाधीशों द्वारा की जाए।

अब हम भरण–पोषण पर आते हैं। बीसवीं सदी में महिलाओं के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या जीविका भरण–पोषण की रही। जब नारी के अतीत का गौरव धूमिल होने लगा और वह पुरुष द्वारा उपेक्षित की जाने लगी तो उसके सामने जीविका भरण–पोषण की विकराल समस्या उत्पन्न हो गई। इस समस्या से निपटने के लिए उपेक्षित महिलाओं के भरण–पोषण का प्रावधान किया गया। बीसवीं सदी में "महिलाओं के अशिष्ट रूपण" की घटनाओं में भी काफी वृद्धि हुई है। महिलाओं को विज्ञापन की वस्तु बना दिया गया तथा सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर उन्हें

**लेखक सामाजिक विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रलेखन अधिकारी हैं।*

अर्धनग्न अवस्था में प्रस्तुत किया जाने लगा। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए सन् 1986 में "महिलाओं का अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम" पारित किया गया। इसमें पुस्तक, पुस्तिका, पेपर, स्लाइड्स, लेखन, फिल्म, रेखाचित्र, रंगचित्र, वीडियो–ऑडियो, छायाचित्र आदि में महिलाओं के अशिष्ट रूपण को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। साथ ही सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर महिलाओं को अभद्र रूप में प्रस्तुत किए जाने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए प्रयास किए गए हैं। "नारी मात्र एक व्यक्ति नहीं अपितु एक शक्ति भी है।" उसका नारीत्व माँ की ममता के रूप में छलकता है। ऐसी नारी का सम्मान एवं गौरव संविधान के अधीन संरक्षित है।

इसी सन्दर्भ में महिलाओं का अनैतिक व्यापार भी में चिन्ता का विषय रहा है। भौतिकवाद के प्रभाव एवं निर्धनता की लाचारी से वेश्यावृत्ति काफी पनपी। महिलाओं एवं कुमारियों के साथ व्यभिचार एक आम बात हो गई। इस भयंकर समस्या से निपटने के लिए सन् 1965 में "अनैतिक व्यापार अधिनियम" पारित किया गया।

अब हम आज की ज्वलंत समस्या "दहेज" पर आते हैं। यह एक सामाजिक कुरीति है, फिर भी बीसवीं सदी में यह छाई रही है। दहेज की प्रथा समाज का एक अंग बनकर रह गयी है। जिसके परिणाम बड़े घातक रहे हैं। एक तरफ दहेज के पीछे असंख्य महिलाएं अकाल मृत्यु का कारण बनी हैं तो दूसरी तरफ निर्धन अभिभावकों के लिए यह अभिशाप साबित हुआ है। अतः इस समस्या से उबरने के लिए सन् 1961 में "दहेज प्रतिरोध अधिनियम" पारित किया गया।

महिलाओं के साथ क्रूरतापूर्ण आचरण अथवा व्यवहार आज एक सामान्य बात हो गई है। इससे शारीरिक एवं मानसिक यातनाएं देने की घटनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे क्रूरतापूर्ण आचरण अथवा व्यवहार को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

अब हम महिलाओं के सिविल अधिकारों पर विचार करते हैं। सिविल अधिकारों में महिलाओ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार उत्तराधिकार का है। सन् 1956 के "हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम" पारित होने के पश्चात् अब महिलाओं को संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सम्पत्ति में हिस्सा मिल गया है।

कार्यरत महिलाओं के हितों के लिए भी विगत सदी में कई महत्वपूर्ण कानून बनाए गए हैं। जिनमें 1961 का "प्रसूति सुविधा व मातृत्व लाभ अधिनियम" अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अलावा विवाह विच्छेद विषयक विधियों में भी महिलाओं को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसी प्रकार "मुस्लिम विवाह विच्छेदन अधिनियम–1939" मुस्लिम महिलाओं को तलाक का अधिकार प्रदान करता है। इसी प्रकार अन्य विधेयक भी महिला संरक्षण में आज भी सुरक्षा, संरक्षा प्रदान करते हैं।

कुल मिलाकर नारी विषयक मानवाधिकारों को विभिन्न विधियों एवं न्यायिक निर्णयों में पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया गया है। बदलते परिवेश में भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में संशोधन कर नारी सम्मान को स्थान दिया गया, नारी सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं को त्याग करने का आदर्श अंगीकृत किया गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग नारी सम्मान के रक्षार्थ हेतु प्रयासरत हैं।

आज सभ्य एवं प्रबुद्ध वर्ग के समक्ष यह सारे प्रश्न उत्तर की प्रतिक्षा में हैं। एक तरफ नारी–स्वातंत्र्य एवं अधिकारों का प्रश्न है तो दूसरी तरफ भारतीय संस्कृति, सदाचार, शिष्टाचार एवं लोकनीति का प्रश्न है। दोनों के बीच संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करने वाली विचारधारा की आवश्यकता है।

कुल मिलाकर बीसवीं सदी में महिलाओं के लिए कई महत्वपूर्ण कानून बनाए गए और पुराने कानूनों में संशोधन किए गए। न्यायालयों द्वारा भी समय–समय पर महिलाओं के हितों के संरक्षण की दिशा में पहल करते हुए कई महत्वपूर्ण निर्णय दिए गए हैं। उच्चतम न्यायालय ने महिलाओं को अवयस्क बच्चों का प्राकृतिक संरक्षक मानकर महिलाओं की क्षमता की पुष्टि कर दी है। देश ने इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया है। इस सदी में महिलाओं को काफी आशाएं और अपेक्षाएं हैं। अब एक ऐसे समाज की संरचना की परिकल्पना है जिसमें नारी को कानून और आन्दोलन का सहारा लिए बिना मुक्त वातावरण में सांस लेने का अवसर मिल सके।

समूचे हिन्दुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में एक ऐसी भाषा या ज़बान की ज़रूरत है, जिसे आज ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग जिसे झट सीख सकें। इसमें कोई शक नहीं कि हिंदी ऐसी ही भाषा है।

– महात्मा गाँधी

हम हिंदी भाषा के मसले में बुद्धिमानी से काम लें, इसको 'एक्सक्लूसिव' के बदले 'इंक्लूसिव' बनाएं और इसमें भारत की उन सभी भाषाओं के तत्वों को शामिल करें जिनसे यह बनी हैं, कुछ उर्दू के छींटे हों और हिन्दुस्तानी भी हो।

– जवाहरलाल नेहरू, संविधान सभा में

efLye cgy b.Mkuf'k;k e fo'o lL–fr ep

डॉ. गौतम कुमार झा*

इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुसिलो बाम्बांग युधोयनो, जिनके नाम में ही इण्डोनेशिया की संस्कृति में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप दिखायी पड़ती है, ने बाली में एक तीन दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन "सतत विकास में संस्कृति की शक्ति" का उद्घाटन कर सतत विकास के लिये संस्कृति की शक्ति को एक प्रधान साधन के रूप में अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

इस सम्मेलन में लगभग 30 देशों और 17 संस्कृति मंत्रालयों से लगभग एक हजार से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यक्रम में मुख्यतः कलाकारों, कारीगरों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, शिक्षाविदों, प्राचीन–परम्पराओं एवं संस्कृतियों के संरक्षण में लगे विद्वानों एवं अनेक गैर सरकारी संगठनों की सहभागिता रही।

इस सम्मेलन के प्रमुख वक्ताओं में अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता और नालंदा विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलाधिपति प्रो. अमर्त्य सेन, इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुसिलो बाम्बांग युधोयनो एवं विश्व प्रसिद्ध पत्रकार फरीद ज़कारिया सम्मिलित हैं।

अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति चिन्तित इण्डोनेशिया सरकार द्वारा आहूत इस भव्य अन्तरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्मेलन के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों पर विमर्श प्रासंगिक है –

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून ने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम में सांस्कृतिक पहलुओं को शामिल करने का आह्वान किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मानना है कि उनके अनेक विकास कार्यक्रम विशेषकर 2011 की अनेक परियोजनाएं विफलताओं से जूझ रही हैं, जिसका कारण सांस्कृतिक पहलुओं को नज़रअन्दाज़ करना रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने माना है कि जनसमुदाय तक पहुँचने के लिये संस्कृति की शक्ति को स्वीकार करना ही होगा।

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि 2009–10 में जब पूरा विश्व आर्थिक संकट से गुजर रहा था एवं विकसित देशों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी तब विकासशील देशों जैसे इण्डोनेशिया पर इस संकट का मात्र आशिंक प्रभाव पड़ा। इसका श्रेय निश्चय ही सांस्कृतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण इस देश की सांस्कृतिक शक्ति को ही जाता है।

मुस्लिम बहुल इण्डोनेशिया, जो संसार का सबसे बड़ा द्वीपसमूह है, जिसमें लगभग 17 हजार छोटे–बड़े द्वीप एवं 300 से अधिक विविध जातीय समूह हैं, स्वयं को रामायण एवं महाभारत से सम्बद्ध मानने में गौरवान्वित महसूस करता है। यहाँ के 88.2% मुस्लिमों में जावा मूल के 41%, मलय मूल के 15% एवं 3% सुण्डानीज़ मूल के हैं। इनका दैनंदिन जीवन हिन्दू संस्कृति से ओत–प्रोत है।

भारतीय संस्कृति की छाप लिये इण्डोनेशिया की पूरे विश्व में अपनी पृथक् पहचान है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह देश संसार की सर्वाधिक मुस्लिम जनसंख्या का घर है। इण्डोनेशिया सामान्यतः शान्तिप्रिय देश है। यह देश जहाँ पर नव इस्लामिक कट्टरपंथी निरन्तर धार्मिक उन्माद को बढ़ाने का प्रयास करते रहे हैं, दृढ़ता के साथ धर्मनिरपेक्षता का पक्षधर है।

बाली, इण्डोनेशिया का हिन्दू राज्य माना जाता है। यह अपने सांस्कृतिक परिवेश और भौगोलिक वातावरण को लेकर पूरे विश्व में एक महत्त्वपूर्ण पर्यटन केन्द्र बनता जा रहा है। पिछले वर्ष जून 2012 तक के आँकड़ों पर यदि ध्यान दिया जाये तो हम देखेंगे कि प्रतिमाह पर्यटकों की संख्या में 15.5% की वृद्धि देखी गयी है, जो यहाँ बढ़ते पर्यटन–उद्योग को रेखांकित करती है।

बाली में आयोजित यह "विश्व सांस्कृतिक मंच" इस वर्ष के सबसे बड़े सम्मेलनों में से एक है। इसके द्वारा जहाँ एक ओर इण्डोनेशिया ने अपनी धर्मनिरपेक्ष छवि को पूरी तरह प्रदर्शित करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर विश्वविख्यात विद्वानों अमर्त्य सेन एवं फरीद ज़कारिया ने इण्डोनेशिया की संस्कृति को भारतीय संस्कृति से जोड़ने एवं दोनों में परस्पर समानता पर प्रकाश डाला। इससे निश्चय ही भारत एवं इण्डोनेशिया के मध्य सांस्कृतिक सेतु सुदृढ़ होंने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

संस्कृति पर आधारित विकास कार्यक्रम सामाजिक समरसता में वृद्धि करते हैं। संस्कृति और समाज परस्पर पूरक हैं। बाली विश्व के दर्शनीय स्थलों में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका सौन्दर्य और इसकी संस्कृति प्रत्येक व्यक्ति को अपनी तरफ आकर्षित करती है। यही कारण है कि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर 1927 में जब अपनी यात्रा के दौरान बाली पहुँचे तो अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा –

"मैं इस द्वीप में जहाँ भी जाता हूँ, मुझे भगवान् का दर्शन होता है।"

पं. जवाहरलाल नेहरू ने बाली के प्राकृतिक सौन्दर्य और सांस्कृतिक वैभव को देखकर इसे "विश्व की सुबह" कहकर सम्बोधित किया और श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने बाली में

**लेखक भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान जेएनयू में सहायक प्रोफेसर हैं।*

अपने आगमन पर अतीव हर्ष के साथ कहा कि "मेरे बचपन का सपना सच हो गया।"

आज हिन्दू सांस्कृतिक विशिष्टता को संजोये निरन्तर अपने पर्यटकों की सेवा में तल्लीन बाली, सांस्कृतिक बदलाव एवं बढ़ते भौतिकतावाद की आँधी से बचा पाने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहा है। तेजी से विस्तार लेते पर्यटन उद्योग के कारण वह पर्यटकों को पाश्चात्य सुख–सुविधाओं को प्रदान कर रहा है, जिसके चलते कहीं न कहीं स्थानीय संस्कृति प्रभावित हो रही है। बाली जैसे दिव्य, ईश्वरीय परिवेश में भी विलासिता और भौतिकता अपना पैर निरन्तर पसार रही है। भौतिकतावाद की आँधी को देख ऐसा लगता है मानो वह बाली की बलि देने के लिये आतुर बैठी है और बाट जोह रही है कि किस दिन इस समावेशी संस्कृति की इतिश्री की जाय। प्रकृति के रम्य पालने में झूलता बाली द्वीप, जहाँ दैनंदिन जीवन का प्रारम्भ प्रातः ईश्वर की वन्दना से होता है, पूर्णतः कृषि पर आधारित है और पग–पग पर यहाँ धार्मिक जीवन के विविध पहलुओं के दर्शन होते हैं। गली, मोहल्ले, चौराहे और नुक्कड़ धार्मिक वातावरण की सुन्दर झलक प्रस्तुत करते हैं । कलात्मकता अपने वैभवशाली रूप में यहाँ विचरण करती है । यदि इसे लोकसंस्कृति का पालना कहा जाय तो अतिश्योक्ति कदापि न होगी। आज भी बाली अपने सांस्कृतिक राशि को संजोये हुये आगे बढ़ रहा है । तेजी से बढ़ते हुये वैश्वीकरण की बयार से बाली भी प्रभावित हो रहा है, यह बात एक कटु यथार्थ के रूप में पूरे इण्डोनेशिया के समक्ष उपस्थित है। वैश्वीकरण की आँधी और बढ़ते पर्यटन के कारण बाली अपनी पहचान खोकर मात्र पर्यटन स्थल बनने की ओर अग्रसर है, यह विषय यहाँ के सामान्य जन से लेकर पण्डितों , विद्वानों एवं स्वयं राष्ट्रपति के लिये गम्भीर चिन्ता का विषय है। इसी चिन्ता को ध्यान में रखते हुये यहाँ "विश्व सांस्कृतिक मंच" का आयोजन किया गया और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुये संस्कृति–रक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया।

बाली की चिन्ताएं एवं उसके संकट लगभग वही हैं जो संकट समूचे दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों अथवा ये कहें कि विकासशील देशों के समक्ष है। एक स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता के अनुसार अब बाली के युवाओं में कृषि के प्रति आकर्षण नगण्य होता चला जा रहा है। 'सुबाक' जो कि बाली में पहाड़ी क्षेत्रों में धान के ढालदार, सीढ़ीनुमा खेतों को पर्याप्त मात्रा में समान जल उपलब्ध कराने के लिये विकसित एक सामाजिक एवं धार्मिक जल–प्रणाली है, अब अपना गौरव खोती जा रही है। इस प्रणाली द्वारा सभी खेतों को समान जल उपलब्ध करवाने के लिये अधिक मानव–श्रम की आवश्यकता पड़ती है। युवाओं द्वारा खेती से मुँह मोड़ने के कारण आज पर्याप्त संख्या में लोग नहीं मिल पाते जो कि 'सुबाक' प्रणाली द्वारा ठीक से सभी खेतों को जल उपलब्ध करवा सकें। जो बाली वासी स्वयं को 'सुबाक' से जोड़कर बहुत गौरवान्वित अनुभव करते थे आज वही 'सुबाक' की दुर्दशा देखकर अतीव दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

बाली में तीव्र गति से पर्यटन–उद्योग के विकास, बढ़ते नगरीकरण, होटल तथा मनोरंजन क्षेत्रों की बढ़ती माँग के कारण कृषि योग्य भूमि पर दबाव बढ़ रहा है, फलस्वरूप भूमि की ऊँची कीमत लगायी जा रही है, जो स्थानीय कृषकों को अपनी भूमि बेचने के लिये प्रेरित करती है। विडम्बना की बात यह है कि इण्डोनेशिया, जो कभी धान–उत्पादन में आत्मनिर्भर हुआ करता था आज अपने पड़ोसी देशों से धान के आयात पर निर्भर है। वहाँ का युवा वर्ग अब जल्दी से रोजगार कर तुरन्त पैसा कमाना चाहता है, उनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है।

प्रो. जेन हैण्ड्रिक और पत्रकार विष्णु वर्द्धन, जिन्होंने बाली हिन्दू दर्शन पर एक किताब "त्रि हित कराना" लिखी है, के अनुसार जीवन में तीन सामंजस्यपूर्ण पहलुओं का होना अनिवार्य है। वे कहते हैं कि ईश्वर ने हमें जीवन दिया है और इस प्रकृति का सृजन किया है। प्रकृति मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करती है। अतः मनुष्य को गाँवों की पारम्परिक संरचना बनाये रखने के लिये कुछ उत्तरदायित्व का निर्वहन करना आवश्यक है, जैसे –

1. पूजा करने के लिये मन्दिर का निर्माण।
2. प्रकृति का संरक्षण।
3. समस्या पर सामूहिक रूप से बहस और उसका समाधान करना।

पिछले कई दशकों में बाली के लोग पाश्चात्य सभ्यता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनकी संस्कृति और परम्परा आज अनुष्ठान मात्र बनती जा रही है। बाली सहित समूचे इण्डोनेशिया पर इस संकट को देखते हुये ऐसा लगता है कि आगे आने वाले समय में इस देश की पहचान मात्र एक पर्यटन एवं मनोरंजन स्थल के रूप में सिमट कर रह जायेगी। हमारे समक्ष थाईलैण्ड का पर्यटन स्थल फुकेट और पटाया की दशा इस बात का एक प्रत्यक्ष उदारहरण है कि कैसे एक देश अपनी सांस्कृतिक विरासत से पूर्णतः वंचित होकर मात्र पर्यटन की दुकान बनकर रह गया ?

इण्डोनेशिया का विश्व संस्कृति मंच तेजी से विलुप्त होती अपनी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं उसके विकास हेतु निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण पहल है। इस कार्यक्रम से न केवल सांस्कृतिक समुदायों में एक चेतना का प्रवाह हुआ है बल्कि उनका अपनी संस्कृति के प्रति विश्वास और दृढ़ हुआ है।

वैश्वीकरण एवं अरब इस्लाम के बढ़ते प्रभावों को देखते हुए इण्डोनेशिया, जो कि एक धर्मनिरपेक्ष देश है, के राष्ट्रपति सुसिलो बाम्बांग युधोयनो की चिन्ता स्वाभाविक है। यह विश्व सांस्कृतिक मंच (World Cultural Forum) उनकी अपने सांस्कृतिक विरासत के क्षरण के प्रति बढ़ती चिन्ता का ही परिणाम है। इस कार्यक्रम में इण्डोनेशिया सहित विश्व के विभिन्न देशों से आये प्रतिनिधियों द्वारा संस्कृति–संरक्षण एवं सम्वर्द्धन पर की गयी चर्चा एवं संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपने कार्यक्रमों में सांस्कृतिक पहलुओं का सम्मिलन निश्चय ही इण्डोनेशिया सहित विश्व के अनेक सांस्कृतिक रूप से सुदृढ़ देशों की संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिये एक मार्ग प्रस्तुत करता है।

ehphvks eknks vkSj ukvksdks dqnks dh tkikuh dforka,¡

अनुवाद : चाँदनी कुमारी*

1909 में जन्मे मीचीओ मादो की कविताओं का फलक अत्यंत विस्तृत रहा है। युवावस्था में जापान की राजनीतिक और आर्थिक असफलताओं ने उनकी कविताओं में एक झुंझलाहट भरा आवेश भर दिया। उनके द्वारा बनाए गए चित्रों को भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया। आरंभ में आजीविका के लिए मादो ने बाल कविताएँ लिखीं, जो बहुत जल्द पूरे जापान में प्रसिद्ध हो गईं। 1994 में उनके बाल साहित्य के लिए उन्हें प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय बेनियल हॉन्स क्रिश्चियन एण्डरसन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रस्तुत है मीचीओ मादो की कविता 'साकुरा नो हाना बीरा' का अनुवाद –

lkdqjk dh i¡[kqMh

(टहनी) फूल से टूटकर (अलग हुई)
एक पंखुड़ी

धरती पर पहुँची
साकुरा की पंखुड़ी

यह परिणति थी
या प्रारंभ

एक बात
साकुरा के लिए
(इस) पृथ्वी के लिए
(पूरे) ब्रह्मांड के लिए
स्वाभाविकता से अधिक
एक बात

सिर्फ वही
एक बात

प्रख्यात स्त्री लेखिका नाओको कुदो का जन्म 1935 में ताइवान में हुआ। उनकी कविताओं में रूमानियत भरी दार्शनिक उलझनों को बुनियादी स्तर पर रेखांकित किया जा सकता है। नाओको ने बच्चों के लिए भी ढेर सारी कहानियाँ लिखी हैं। उनके बाल कहानी–संग्रह 'तोमोदाची वा उमी नो निओई' को 1984 में प्रतिष्ठित सेंकेई चिल्ड्रेन्स बुक अवार्ड प्रदान किया गया।

प्रस्तुत है नाओको कुदो की कविता 'आइताकुते' का अनुवाद –

feyus ds fy,

मिलने के लिए किसी से
पाने के लिए कुछ
जन्म लिया है
महसूस करती हूँ ऐसा ... लेकिन

कौन है, वह क्या है
कब होगा मिलन

धमाचौकड़ी के बीचों–बीच
भटक गए बच्चे की तरह
खोयी हूँ

लगता है ऐसा, फिर भी
दबोच रखा है
उस अदृश्य को
इसलिए
अब न छोड़ूँगी वह
मिल सकूँ उससे
इसलिए ...।

*अनुवादक जेएनयू के जापानी अध्ययन केन्द्र में शोध छात्रा हैं।

vuokn lEcU/kh leL;k,¡

प्रसेनजित कुमार*

साहित्यिक अनुवाद के संबंध में विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से विचार किया है। किसी ने उसे **iujpuk** कहा तो किसी ने **iul`tu** किसी ने अनुसृजन कहा है तो किसी ने **lkfgfR;d iuthou**। अनुवाद में वही आनन्द का सुख प्राप्त होता है जो मूल कृति के सृजन में मिलता है। मूल कृति में रचनाकार अपने भाव जगत को साकार रूप प्रदान करता है तो अनुवादक उस भाव जगत से तदात्मय स्थापित कर लक्ष्य भाषा में उसी की पृष्ठभूमि में उसकी पुर्नसृष्टि करता है। रचनाकार तो अपनी सृजन प्रक्रिया में अवलोकन, अनुभव, चिन्तन–मनन्, और सृर्जनात्मक अभिव्यक्ति चार चरणों से गुजरता है। किन्तु अनुवादक की समस्याएँ तब आती हैं, जब इन चारों चरणों की प्रक्रिया से अनुवादक दुबारा गुजरता है और उसे अन्य भाषा की जमीन में उसी के अनुरूप अभिव्यक्ति भी प्रदान करता है। इस प्रकार अनुवादक से भी सृजनशीलता और संवेदनात्मकता की नितांत अपेक्षा रहती है। क्यों इस असम्भव कार्य को अधिक से अधिक संभव बनाने के लिए अनुवादक को कवि कर्म के दायित्व का निर्वाह करते हुए दोहरा प्रयास करना पड़ता है।

dk0;kuokn djr le; vuoknd dh leL;k,¡

सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद एक ऐसी कला है जिसे ब्रह्मा की सृष्टि के समान माना जा सकता है, किन्तु इस कला को प्रकृति में गौण और प्रकार्य में अमौलिक माना गया है। अनुवादकर्मी एक ऐसा कलाकार है जिसे **vkykpd] Hkk"kkfon** और **jpukdkj** तीनों स्थितियों में एक साथ गुजरना पड़ता है। वह आलोचक या पाठक के रूप में मूल कृति से बीच का पता लगाता है। एक अनुवादक को समस्या तब आती है जब एक भाषाविद के रूप में उस बीज को अन्य भाषा की जमीन की जलवायु वातावरण आदि को समझते हुए, उस जमीन पर प्रतिरोपित करता है, और रचनाकार के रूप में उसे संवारता है। जिस प्रकार संगीतकार संगीत के संदर्भ में नई धुनों की व्याख्या करता है या नाटक के विभिन्न पात्रों के अभिनय में नाटक के भावों एवं विचारों की व्याख्या करता है। इस प्रकार विख्यात अनुवादशास्त्री फॉस्ट के अनुसार एक अनुवादक तभी सफल और अपनी समस्याओं को पार कर सकता है जिस प्रकार अभिनय या नृत्य में अभिनेता या नर्तक के हाव–भाव और भाव भंगिमाएं स्पष्ट होती हैं।

सृजनात्मक साहित्य के पाठ ग्रहण करने के लिए अनुवादक किसी दृष्टि विशेष के आधार पर अर्थ ग्रहण करता हैं अनुवाद प्रक्रिया में पाठ का अर्थ ग्रहण करने की जो दृष्टि रहती है तथा उन समस्याओं के लिए एक अनुवादक को जिन–जिन तैयारियों की आवश्यकता होती है, उसको सुप्रसिद्ध रूसी विद्वान लोटमैन ने चार वर्गों में विभाजित किया है।

1- **Hkk"kkijd n`f"V %** इसमें ध्वनि स्तर, शब्द स्तर और वाक्य–विन्यास की दृष्टि से व्याख्या की जाती है। ध्वनि स्तर पर कृति की छंद योजना पर ध्यान दिया जाता है। शब्द स्तर पर शब्द–चमत्कार और शब्द–सौष्ठव पर बल दिया जाता है और वाक्य–विन्यास के स्तर पर अलंकार–व्यवस्था पर दृष्टि अधिक केंद्रित रहती है।

2- **fo"k;ijd n`f"V %** इसके अंतर्गत काव्यकृति की विषयवस्तु पर ध्यान केंद्रित रहता है। स्रोत भाषा में रचित काव्यकृति को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करने के लिए अनुवादक की दृष्टि रहती है।

3- **lajpukijd n`f"V %** इसमें काव्य की संरचना पर ध्यान केंद्रित रहता है जिसमें कृति के पाठ की विभिन्न इकाइयों के परस्पर संबंध और उनके संयोजन का विवेचन होता है।

4- **lkfgR;srj n`f"V %** पाठ के अनुवादक की दृष्टि कविता के भीतर साहित्येतर संदेश पर केंद्रित रहती है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, मानवीय आदि विभिन्न दृष्टियों को अनुदित पाठ में संप्रेषित करने पर बलदिया जाता है।

एक अनुवादक को स्रोत भाषा की किसी अभिव्यक्ति की पूर्णतः समान अभिव्यक्ति जो शब्दतः और अलंकार अर्थात दोनों रूपों में लक्ष्य भाषा में संप्रेषित है। पूर्णतः समान अभिव्यक्ति से अभिप्राय यह है कि स्रोत भाषा की रचना या सामग्री को सुन या पढ़कर स्रोत भाषा–भाषी जो अर्थ (अभिधार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ) ग्रहण करे और लक्ष्य भाषा से उसी के अनुरूप ग्रहण करे। स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति से जो अर्थ व्यक्त होता है वह लक्ष्य भाषा की अभिव्यक्ति से व्यक्त होने वाले अर्थ की तुलना में या तो विस्तृत होता है या फिर इनमें से दो या अधिक का मिश्रण होता है। साथ ही दोनों भाषाओं की अभिव्यक्ति इकाईयों शब्द, शब्द–बंध, पद, पद–बंध, वाक्यांश, उपवाक्य, वाक्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ के प्रसंग सहचर्य भी सर्वदा समान नहीं होते और हो भी नहीं सकते। इसी कारण स्रोत भाषा में अभिव्यक्ति पक्ष तथा अर्थ पक्ष के तालमेल को सर्वदा उसी भाषा में ला पाना संभव नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि भारत में अनुवादक के सामने अनुवाद हेतु चार प्रकार की

*लेखक भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू में शोध छात्र हैं।

सामग्री उपलब्ध होती है, तथा इसकी कठिनाईयों पर एक अनुवादक को किस तरह से विजय प्राप्त करनी है इसकी तैयारी भी उन्हें कर लेनी चाहिए।

1- oKkfud xFk ;k fof/k l lcf/kr lkexh

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की समस्या काव्यानुवाद आदि से काफी अलग है। जैसे–जैसे वैज्ञानिक प्रगति हो रही है और विज्ञान विषयक बाङ्मय का सृजन हो रहा है वैसे ही वैज्ञानिक अनुवाद की आवश्यकता बढ़ती जारही है। इस दिशा में अग्रणी केवल अंग्रेजी, जर्मन, रूसी तथा जापानी ही है जिसमें वैज्ञानिक बाङ्मय के भी काफी अनुवाद होते रहते हैं वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दों की होती है। अतः प्रायः वे नई चीजें बनाते, खोजते तथा नई संकल्पनाओं को जन्म देते हैं। इन सभी के लिए नये शब्द भी बनाते जाते हैं। दूसरे इन भाषाओं में आधुनिक काल में वैज्ञानिक ग्रंथ लेखन तथा अनुवाद की सुदीर्घ परंपरा है।

oKkfud vuqoknd dh fo'k"krk,¡

क. वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद को विषय तथा दानों भाषाओं का जानकार होना चाहिए। यदि ऐसा व्यक्ति न मिले तो पहले विषय के जानकार (जो विषय तथा स्रोत भाषा को ठीक से जानता हो) से उसका अनुवाद कराकर, लक्ष्य भाषा के अच्छे जानकार से अनुवाद का पुनरीक्षण (वेटिंग) करा लेना चाहिए।

ख. वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की दूसरी महत्वपूर्ण बात है उसकी भाषा–शैली की स्पष्टता, पूर्णता, सटीकता, सरलता और असंदिग्धता। सच पूछा जाये तो 'ये गुण' वैज्ञानिक लेखन में होने चाहिए, अतः वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में भी इनकी अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है।

ग. वैज्ञानिक अनुवाद बहुत स्पष्ट तथा पूर्ण होना चाहिए। वैज्ञानिक साहित्य में अस्पष्टता यह सबसे बड़ा दुर्गुण है। वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद को अपना अनुवाद इतना स्पष्ट और पूर्ण करना चाहिए कि पाठक को मूल सामग्री में दी गई सूचना अपरिवर्तित तथा पूर्ण स्वरूप के बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सके।

घ. वैज्ञानिक अनुवाद को स्पष्ट तथा सटीक बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि अनुवादक न तो अपनी साहित्यिक शैली का उसमें कौशल दिखाए, न मूल और अनुवाद के बीच में अपनी रूचि और अपने व्यक्तित्व को आनके दे।

ङ. वैज्ञानिक के अनुवादक को ऐसे शब्द–चयन करना चाहिए, जिनका अर्थ पूर्णतः निश्चित हो तथा किसी प्रकार की द्वयत्ता की संभावना नहीं होनी चाहिए। पूरे अनुवाद में एक शब्द का एक ही अर्थ हो, प्रयोग करना चाहिए।

च. प्रतीक चिह्न वही रखने चाहिए जिससे लक्ष्य भाषा–भाषी परिचित हों। यदि किसी पारिभाषिक शब्द या प्रतीक चिह्न का प्रयोग अनुवादक किसी नये अर्थ में प्रयोग करने के लिए बाध्य है तो यथास्थान इसका स्पष्ट संकेत कर उसका प्रयोग करना चाहिए।

2- l tukRed lkfgR;

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उपयुक्त वर्गों को निम्नलिखित दो स्थूल वर्गों में सम्मिलित कर सकते हैं –

d- lkfgfR;d vuqokn vkj [k- lkfgR;rj vuqokn

जहाँ तक साहित्यिक अनुवाद का प्रश्न है, इसमें काव्यानुवाद, नाट्यानुवाद और कथानुवाद सम्मिलित हैं। इन तीन वर्गों में साहित्य की सभी विधाएँ आ जाती हैं

साहित्यिक अनुवाद की सबसे प्रमुख समस्या है– स्रोत भाषा के सभी शब्दों के लिए लक्ष्य भाषा में सर्वथा समान विकल्प मिलेगा या नहीं मिलेगा। काव्यानुवाद में विकल्प मिलना आसान नहीं है, किन्तु गद्य का अनुवाद करते समय यह आसानी से मिल सकता है। गद्य का अनुवाद करते समय शब्दकोश का सहयोग ले सकते हैं, परन्तु काव्य में विशेष सहायता नहीं कर सकता है।

कविता ध्वनि, शब्द और अर्थ का योग मान जाती है। लक्ष्य भाषा में इसे अवतरित करना कठिन अवश्य है। हिन्दी के 'अर्धांगिनी' शब्द को ले सकते हैं। इस शब्द में 'पत्नी' के भाव के साथ एक श्रद्धाभाव भी है। अंग्रेजी का 'बेटर हाफ' (Better half) शब्द 'अर्द्धांगिनी' के विकल्प के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं, क्योंकि 'अर्द्धांगिनी' में श्रद्धा है, गम्भरीता है, जबकि 'बेटर हाफ' में एक विनोदी भाव है। लेकिन अनुवादक को सर्वप्रथम ऐसे सांस्कृतिक शब्दों का अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की तरह व्यक्त करने के लिए पाद–टिप्पणी (Foot-Notes) देकर लक्ष्य भाषा तक संप्रेषित करना चाहिए, यह एक अनुवादक की सर्वप्रथम तैयारी होनी चाहिए।

3- fof/k vkj U;k;ky;h lkfgR; d vuqokn e ,d vuqoknd dh r;kjh

विधि एक विशिष्ट प्रयुक्ति है, जिसकी अपनी विशिष्ट शब्दावली और संरचना होती है। विधि में शब्द या अभिव्यक्ति के सामान्य अर्थ तो होते हैं, किंतु इसके साथ–साथ वे न्यायालय द्वारा मान्य निर्वचन के विद्धांत पर भी आधारित होते हैं, इसीलिए विधि के संदर्भ में वही अर्थ प्रतिपादित करना उचित माना जाता है। इसमें प्रयास रहता है कि उसकी भाषा सुव्यवस्थित, सुबद्ध और नियामानुकूल हो ताकि उससे केवल एक ही अर्थ निकाला जा सके। इस पर एकार्थकता का नियम लागू होता है और यही विधिवेत्ता का अभीष्ट है। वस्तुतः विधि और न्यायालय संबंधी शब्दों के अर्थ का परिसीमन होता है और वाक्य रचना भी इस प्रकार की होती है कि उससे एक ही अर्थ का बोध हो। इसमें न तो अर्थ की अव्याप्ति होती है और न ही अतिव्याप्ति। यही कारण है कि सामान्य जीवन में किसी अभिव्यक्ति का

कोई भी अर्थ व्यक्ति निकला सकता है, किंतु विधि संबंधी अभिव्यक्ति का अर्थ निकालने का अधिकार न्यायालय के पास रहता है। इसलिए अपने हितों के संरक्षण के लिए न्यायालय जाना पड़ता है और अपने पक्ष के लिए उसके निर्णय की अपेक्षा महसूस की जाती है। विधि की भाषायी संरचना अलग होने के कारण कई बार इसके वाक्य अटपटे से लगते हैं और दुर्बोध भी हो जाते हैं।

4- lEi.k vuokn djr le; ,d vuoknd dh r;kfj;k

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, मूल सामग्री को पूरी तरह अनूदित करके प्रस्तुत करना सम्पूर्ण अनुवाद कहलाता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक से यह अपेक्षा रहती है कि वह मूलपाठ के किसी भी अंश को छोड़े बिना पूरा–का–पूरा अनुवाद करके दे। अधिकांश जो भी अनुवाद किए जाते हैं, वे सम्पूर्ण अनुवाद ही होते हैं। साहित्यिक अनुवाद और विशिष्ट अनुवाद और विशिष्ट दोनों ही सम्पूर्ण अनुवाद की श्रेणी में आते है।

lEi.k vuokn d pkj mi idkj fd, tk ldr g &

¼d½ **'kkfCnd vuokn &** शाब्दिक अनुवाद में मूल पाठ का शब्दशः अनुसरण करते हुए अनुदित पाठ को मूल पाठ के अधिकतम निकट रखने का प्रयास किया जाता है। इस तरह के अनुवाद धर्म ग्रंथों जैसे– बाइबिल, कुरान, श्रीमद्भागवतगीता, गीता, रामचरितमानस आदि के अनुवाद करते हैं।

¼[k½ **LoPNUn vuokn &** स्वच्छन्द अनुवाद में मूल पाठ के शब्दों और वाक्यों को इतना अधिक बदल दिया जाता है कि अनुदित पाठ और मूल पाठ में मिलान करना संभव नहीं हो पाता। जैसे– जर्मन से अंग्रेजी में अनुदित अन्र्स्ट हाइनरिख हैकेल की पुस्तक The Riddle of Universe का विश्वप्रपंच नाम से हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया अनुवाद स्वच्छन्द अनुवाद है।

¼x½ **:kUrj &** में भाषा की प्रकृति और समाज के अनुसार कुछ अन्य बदलाव कर दिए जाते हैं। रूपान्तर को छायानुवाद भी कहते हैं। प्रेमचंद और जैनेन्द्र कुमार ने तुर्गनेव, टॉलस्टॉय और गोर्की की कुछ कहानियों का हिन्दी में रूपान्तरण किया। इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विलियम शेक्सपियर के अंग्रेजी नाटक मर्चेंट ऑफ वेनिस का दुर्लभ–बन्धु हिन्दी रूपान्तरण किया है। उन्होंने पूरे नाटक का भारतीयकरण कर दिया है।

fu"d"k

इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक अनुवादक को पूर्णरूप से मूल रचनाओं को बहुत करीब तथा बारीकी से जानने और समझने के बाद ही उसका स्रोत भाषा के अनुकूल अनुवाद करना चाहिए तथा एक अनुवादक को मूल लेखक के साथ आत्मसात् कर लेना चाहिए। कुल सांस्कृतिक काव्य अनुवादों के शब्दों के अनुवाद में अगर कठिनाइयाँ हों तो उसे पाद–टिप्पणी देकर वर्णन करना ही उचित है।

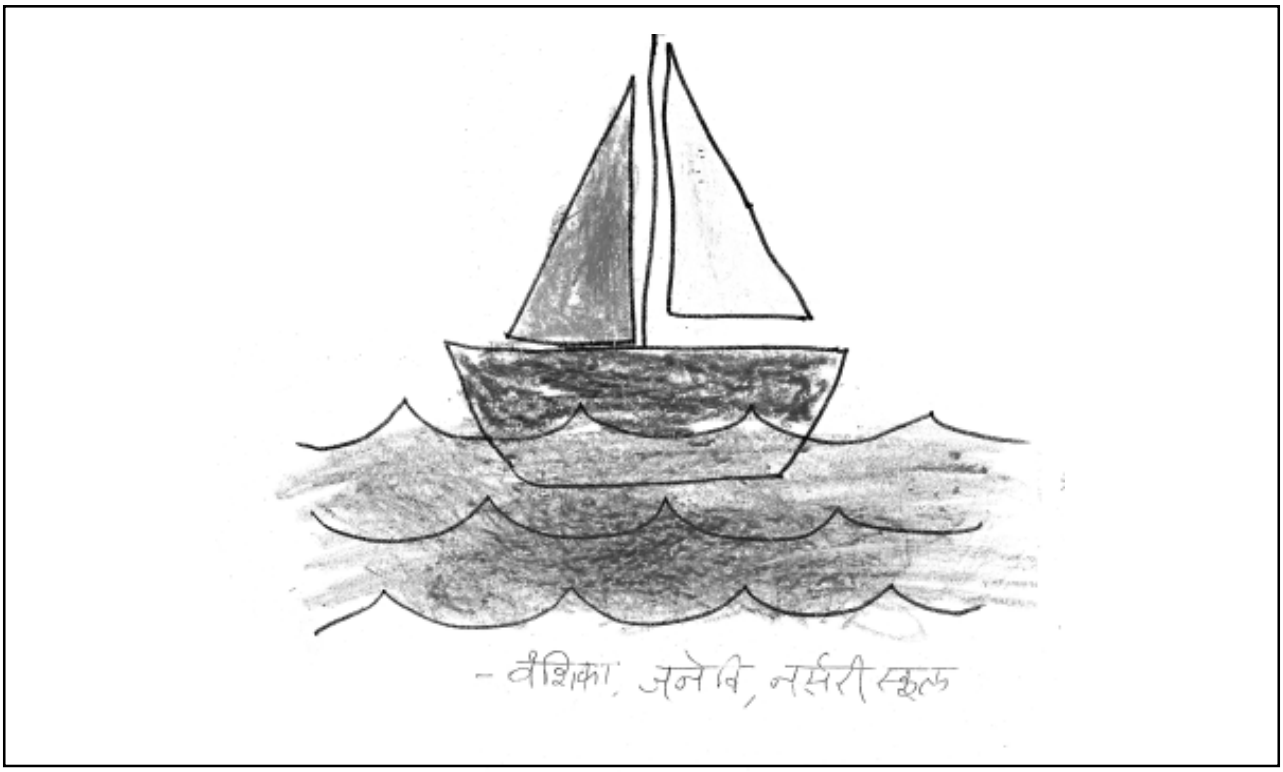

jktHkk"kk ij lekykspukRed nf"Vdks.k

डॉ. सत्येन्द्र कुमार*

किसी देश की भाषा और उसका साहित्य उस देश की सभ्यता और संस्कृति का दर्पण होता है। भाषा और साहित्य की समृद्धि से देश की समृद्धि को आँका जा सकता है। भाषा ही मानव–मैत्री एवं बन्धुत्व की भावना का संचार करने का एक उत्तम माध्यम है। भाषा से ही दिलों की दूरियां दूर होती हैं, और भाषा से ही समाज, देश एवं विश्व को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। यही कारण है कि हमारे ऋषि–मुनि, साहित्य–मनीषी, देश–भक्त और राजनीतिज्ञ सदा भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए संघर्ष करते रहे हैं।

भारत चूँकि विविधता में एकता का एक अनूठा उदाहरण है, यहाँ विभिन्न जाति, धर्म एवं संस्कृति के लोग निवास करते हैं, अतः विभिन्न, भाषाओं का होना भी स्वाभाविक है। यहाँ हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, मराठी आदि कई भाषाओं का प्रचलन है। सभी अपनी–अपनी भाषा की उन्नति एवं प्रयोग के लिए स्वतंत्र हैं। लेकिन इन सबके बावजूद हिन्दी भाषा शीर्षस्थ पर है और शीर्षस्थ पर रही है। यह बात अलग है कि राजनीतिक स्वार्थों के कारण हिन्दी को अपने अस्तित्व से जूझना पड़ा है और आज भी जूझना पड़ रहा है। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि सूर, तुलसी, मीरा और महादेवी वर्मा जैसे साहित्यक–मनीषियों ने जहाँ हिन्दी को जमीन से आसमान तक की उँचाइयों तक पहुंचाया है, वहीं अटल विहारी बाजपेयी जैसे राजनेता इसे देश की सीमापार कर संयुक्त राष्ट्र संघ तक ले गये हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि राजभाषा हिन्दी में गंगा जैसी भारतीय संस्कृति की संवाहक गति और शक्ति है। यही कारण है कि संविधान में भी हिन्दी को "राजभाषा" के रूप में अंगीकृत किया गया हैं।

लेकिन साथ ही यह भी कटु सत्य है कि कई बार भाषा देश के विभाजन का अथवा पृथक राज्य के अस्तित्व का कारण बनती है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भाषा के आधार पर राष्ट्र और राज्यों का विभाजन भी हुआ है। इस सन्दर्भ में यदि हम भारत को लें, तो यहाँ के अधिकांश राज्य अथवा प्रान्त भाषा के आधार पर बने हैं। तमिलनाडु-तमिल भाषा, महाराष्ट्र-मराठी भाषा, गुजरात-गुजराती भाषा, आन्ध्र प्रदेश-तेलगू भाषा, ओडीशा-उडिया भाषा, केरल-मलयालम भाषा, तो पश्चिम बंगाल-बंगला भाषा के आधार पर निर्मित प्रान्त है। इन सबके बावजूद भारत की एकता और अखण्डता अक्षुण्ण है।

हमारे संविधान में अल्पसंख्यक भाषियों के लिये अलग से विशेष व्यवस्थाएं की गयी हैं। भाषा के सम्बन्ध में देश की एक नीति निर्धारित है। हमारे यहाँ की कामकाज की भाषा भी है तो राजकाज की भाषा भी, जिसे हम राजभाषा भी कह सकते हैं। संविधान में राजभाषा के बारे में विस्तार से प्रावधान किये गये हैं। यह प्रावधान सामाजिक परिवर्तन के द्योतक हैं।

भारत के संविधान में हिन्दी को "राजभाषा" के रूप में अंगीकृत किया गया है न कि "राष्ट्रभाषा" के रूप में। अतः यह समझ लेना गलती होगी कि संविधान के अनुसार हिन्दी हमारी "राष्ट्रभाषा" है।

1. संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।
2. किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन शासकीय प्रायोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उनका ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा है।

इसी प्रकार भारत संघ के लिए राजभाषा के रूप में "हिन्दी" को तथा लिपि के रूप में "देवनागरी" को प्रतिष्ठित किया गया है। अंकों का रूप "भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप" स्वीकार किया गया है।

भारतीय संविधान में एक राजभाषा अयोग के गठन का प्रावधान किया गया है, जो मुख्य रूप से –

(i) शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग;
(ii) शासकीय प्रायोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों;
(iii) संघ एवं राज्यों तथा एक दूसरे राज्यों के बीच पत्र व्यवहार की भाषा;
(iv) उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में प्रयोग की जाने वाली भाषा;
(v) अधिनियमों एवं विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा;
(vi) अंकों के स्वरूप।

इस व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि संघ हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए तत्पर है।

लेखक सामाजिक विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रलेखन अधिकारी हैं।

यदि राष्ट्रपति द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित किया जाता है, जिसका उद्देश्य हिन्दी भाषा के लिए प्रशिक्षित करना हो तो वह विधि मान्य होगा।

jk tHkk"kk ij lekykspukRed nf"V

हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुए एक लम्बा समय होने आया है, लेकिन आज भी वह एक प्राणविहीन मूर्ति के रूप में संविधान के पत्रों की शोभा मात्र बढ़ा रही है। कहने को तो हिन्दी को भारत की राजभाषा कहा जाता है लेकिन वह अब तक अपना यथोचित स्थान नहीं बना पायी है।

संविधान में यह स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि "संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।" लेकिन साथ ही साथ उसमें इतने "किन्तु" "लेकिन" व "परन्तुक" लगा दिये गये कि वह आज तक उन्हीं के माया जाल में फंसी हुई है।

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में ही एक परन्तुक लगाकर यह व्यवस्था कर दी गई कि – "इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का पूर्ववत प्रयोग किया जाता रहेगा।" अनुच्छेद के एक खण्ड में तो इससे एक कदम और आगे बढ़ गया और उसमें यह कह दिया गया कि – "संसद उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात भी विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का उपबन्ध कर सकेगी।" यह "परन्तुक" ऐसा बना कि हिन्दी आज तक उसके जाल में कैद है। मन बहलाने के लिए अनुच्छेद–344 में हिन्दी के अधिकारिक विकास एवं प्रयोग के लिए उपाय सुझाने हेतु एक राजभाषा आयोग का गठन करने की बात कह दी गई। आयोग तो बन गया लेकिन हिन्दी अभी भी अपने पूर्ववत स्थान पर यथावत खड़ी है।

अब हम प्रान्तीय भाषाओं पर आते हैं। संविधान में यह कहा गया है कि राज्य में प्रयोग की जाने वाली भाषा का निर्धारण स्वयं राज्य के विधान मंडल कर सकेंगे। वे चाहें तो राज्य के कामकाज की भाषा उस राज्य में बोली जाने वाली भाषा या हिन्दी रख सकेंगे। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो शासकीय प्रयोजनों के लिए उस राज्य की भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। इस प्रकार यहाँ भी हिन्दी के निरपेक्ष प्रयोग पर प्रश्न चिह्न लगा दिया गया। फिर इस व्यवस्था को भी अनुच्छेद–346 एवं 347 के अधीन कर दिया। इनमें हिन्दी भाषा के प्रयोग पर दो अंकुश लगा दिये गये : **igyk &** यह कि जब तक दो राज्यों के बीच पत्र व्यवहार में हिन्दी के प्रयोग का करार नहीं तब तक सत्समय प्राधिकृत भाषा का यथावत प्रयोग किया जाता रहेगा; और **nl jk** – यह कि राष्ट्रपति द्वारा किसी राज्य के लिए उस राज्य के अधिकांश भाग में बोली जाने वाली भाषा को वहाँ की शासकीय भाषा घोषित किया जा सकेगा। यहाँ फिर हिन्दी भाषा अपना स्थान पाने के लिये मुंह ताकती रह गई।

अनुच्छेद 350 एवं 350(क) में भी क्रमशः शिकायतें दूर करने के लिए अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की भाषा और प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम "हिन्दी" नहीं रखा गया।

यह बात अलग है कि उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में हिन्दी के प्रयोग को अवश्य प्रोत्साहित किया है। हुआ यह कि तमिलनाडु सरकार ने हिन्दी विरोधी आन्दोलनकारियों के लिये एक पेंशन योजना बनाई। इस पेंशन योजना को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक करार देते हुए कहा कि यदि कोई राज्य हिन्दी या किसी अन्य भाषा के विरुद्ध मनोभाव को उत्तेजित करने में लगता है तो ऐसी मनोवृत्ति को आरंभ में ही नष्ट कर देना उचित है क्योंकि ये राष्ट्र विरोधी एवं लोकतंत्र विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। चूँकि हिन्दी भाषा का विरोध करने वालों को प्रोत्साहन देने में हिन्दी के उत्थान में गतिरोध उत्पन्न होता है और विघटनकारी तथा अलगाववादी ताकतों को बल मिलता है। अतः ऐसी पेंशन योजना अवैध एवं असंवैधानिक है।

जहाँ तक न्यायालयों की भाषा का प्रश्न है, अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के कामकाज की भाषा अंग्रेजी भाषा रखी गई है। कोई उच्च न्यायालय हिन्दी का प्रयोग राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से केवल राज्यपाल के आदेश से ही कर सकता है, लेकिन निर्णय डिक्री और आदेशों की भाषा तो फिर भी अंग्रेजी ही रहेगी। उच्चतम न्यायालय में बहस की भाषा के संबंध में एक महत्वपूर्ण मामला है जिसमें पक्षकार ने हिन्दी में बहस करने को इजाजत माँगी थी जो नहीं दी गई। यही हाल नियमों, विनियमों, अधिनियमों एवं विधेयकों का है। केन्द्र में नियमों, विनियमों, अधिनियमों एवं विधेकों का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी निर्धारित किया गया है। राज्यों में हिन्दी या अन्य किसी भाषा का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन उसके साथ अंग्रेजी पाठ लगाना आवश्यक है और उसे ही प्राधिकृत माना गया है।

इसी सन्दर्भ में राजभाषा अधिनियम, 1963 भी संवैधानिक प्रावधानों को कार्य रूप में परिणित करने के लिए बनाया गया है। इसकी धारा–3 में भी यही प्रावधान किया गया है कि संविधान के प्रवर्तन में आने के पन्द्रह वर्ष बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग यथावत होता रहेगा साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि संघ और राज्य के बीच पत्र–व्यवहार की भाषा अंग्रेजी तब तक बनी रहेगी जब तक वह राज्य हिन्दी को राजभाषा के रूप में अंगीकृत नहीं कर लेते। ठीक इसी प्रकार की एक और व्यवस्था इसी धारा में की गई है जिसके अनुसार दो राज्यों के पत्र–व्यवहार की भाषा हिन्दी तभी हो सकेगी जबकि दोनों राज्यों में हिन्दी को राजभाषा के रूप में अंगीकृत कर लिया गया हो। यदि उनमें से किसी एक राज्य में किसी एक राज्य ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया है और दूसरे ने नहीं तो ऐसी दशा में हिन्दी के साथ अंग्रेजी अनुवाद दिया जाना आवश्यक होगा। इसी प्रकार धारा–7 में भी न्यायालयों की भाषा के बारे में भी वही प्रावधान किये गये हैं जो संविधान में मिलते हैं। इस प्रकार राजभाषा अधिनियम, 1963 से भी हिन्दी के विकास को कोई विशेष बल नहीं मिलता है।

fgUnh fgr l t/Mk mPp U;k;ky; dk ,d egRoi.k Qlyk

ग्वालियर में "लक्ष्मीबाई नेशनल कालेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन" शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण देने वाला एक केन्द्रीय संस्थान है। इस संस्थान में अंगेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है। डॉ. अमरेश कुमार ने मध्य–प्रदेश उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर कर संस्थान में प्रशिक्षण का माध्यम अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी में भी रखे जाने की माँग की। उन्होंने यह कहा कि विद्यार्थियों को अपनी परीक्षा का माध्यम हिन्दी रखने की छूट दी जानी चाहिए। उन्होंने केन्द्रीय सरकार के कई परिपत्रों का हवाला भी दिया। अन्ततः उच्च न्यायालय ने अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी माध्यम रखे जाने के निर्देश दिये।

उच्च न्यायालय ने कहा – "भारत को आजाद हुए पचास वर्ष हो गये हैं लेकिन हमारी मानसिक दासता अभी भी यथावत है। संविधान के अनुच्छेद, 343 में हिन्दी को हमारी राजभाषा घोषित किया गया है लेकिन अंग्रेजी के बल पर उच्च पदो पर आसीन होने की आकांक्षा रखने वाले मुट्ठी भर लोग इसे अपना यथोचित स्थान दिलाने में कंटक बने हुए हैं। भारत में अंग्रेजी जानने वाले लोगों का प्रतिशत नगण्य है फिर भी अंग्रेजी के बल पर वे अपने आप को अन्य लोगों से ऊपर मानते हैं। यह सुस्थापित है कि बालक अपने विचारों की अभिव्यक्ति अपनी मातृभाषा में अधिक अच्छी तरह कर सकता है। ऐसे बालकों पर अंग्रेजी थोपना उनके मानसिक एवं बौद्धिक विकास को अवरुद्ध करना है।"

मध्य–प्रदेश उच्च न्यायालय का यह निर्णय हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपना यथोचित स्थान प्रदान करने की दिशा में समय के दस्तावेज पर ऐसा सशक्त हस्ताक्षर है जो आने वाले समय में "एक हृदय हो भारत जननी" की कल्पना को साकार करेगा।

इसी सन्दर्भ में यहाँ इंग्लिश मीडियम स्टूडेन्टस पेरेन्टस एसोसिएशन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक के मामले को उद्धृत करना समीचीन होगा। इस मामले में संविधान के अनुच्छेद–350(क) की व्याख्या करते हुए यह कहा गया है कि – "प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।"

यह बात अलग है कि हिन्दी हितरक्षक समिति बनाम यूनियन आफ इंडिया के मामले में परीक्षा का माध्यम हिन्दी रखने से इन्कार किये जाने को असंवैधानिक नहीं माना गया। लेकिन यूनियन आफ इंडिया बनाम मूदासोली के मामले में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है – "हिन्दी में शिक्षा देने का आवद्धकर आदेश संविधान के किसी भी अनुच्छेद का उल्लंघन नहीं करता है, अपितु यह संविधान के अनुच्छेद–343 एवं 344 की भावना को मूर्तरुप प्रदान करता है।

आज के बदलते परिवेश में यदि हम भूमण्डलीकरण के हिसाब से जब आकलन करते हैं तो हमें तथ्यों से पता चलता है कि जो व्यक्ति अंग्रेजी भाषा में समृद्ध ज्ञान रखते हैं वे साठ परसेंन्ट ज्यादा कमाते हैं। इस कारण आज आम जनता में इस बात को महसूस किया जा रहा है कि जो व्यक्ति अच्छी अंग्रेजी बोल लेता है या पर्याप्त ज्ञान रखता है उसका सामाजिक स्तर हिन्दी जानने वालों से ज्यादा उच्च समझा जाता है। यहाँ फिर वही समानता व असमानता की कडी हमारे दैनिक क्रियाकलापों और व्यवहारों में स्पष्टतया देखी जा सकती है।

dfork,a

thou ,d utj ---

एक भोर, एक किरण
एक परिंदा, ओस में भीगा
पंख फैलाकर, उड़ने को बेबस
निकल पड़ा निवाले के तलाश में
नहीं जानता, बन जाएगा एक दिन
स्वयं काल का निवाला

ऊर्जा का श्रोत, अंकुरित बीज
फूल फल आहार, जीवन रूपी व्यवहार
बचपन जवानी और काल, के चक्रव्यूह में फंसा जीव
नहीं जानता कि निर्मित है, जिन सूक्ष्म कणों से हैं निर्जीव

चाँद की चांदनी में नहाये
कौआ कुछ ऐसे इतराये
मानो बगुला अपने रूप रंग से बेखबर
दूधिया रात में इठलाये
नहीं जानता बेचारा
चाँद के ढलते ही
सूरज के निकलते ही
पा जायेगा अपनी पहचान

जीव जीवन जीता है किन्तु
नहीं जानता जीवन के माने
जानता है केवल स्वयं को
प्रकृति के परिवेश में ढालना
ढलते ढलते, ढलते सूरज सा
कब ढल जाएगा नहीं जानता

ik-nhid 'kek*

> *है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी–हरी*
> *हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।*
> – मैथिलीशरण गुप्त

[*]कवि जीवन विज्ञान संस्थान, जेएनयू में प्रोफेसर हैं।

rj bUrtkj e ---

कल तुझको देखा,
बारिश में भीगी,
शरमाई सी, सकुचाई सी,
पल्लू को दांतों में दबाए,
नज़रों को झुकाए
मेरे इंतज़ार में ...
न जाने कब से खड़ी थी ...
बारिश की बूंदें
तेरे सुर्ख़ गालों पे फिसलतीं ...
कंपकंपाते होठों को छूतीं
और शोला बन जातीं ...
तेरी बिंदिया की सुर्ख़ी,
बारिश से धुल कर ...
तेरे माथे पे फैली थी ...
तेरे भीगे गेसुओं की लटें,
चंचल लताओं की मानिंद ...
तेरे चेहरे से चिपकी थीं ...
तेरे मरमरी तराशे बदन से
लिपटी वो भीगी गुलाबी साड़ी ...
और मैं वो मंज़र देखता,
उफनती, सुलगती साँसों के साथ ...
तेरी बेक़ाबू धड़कनों की ताल सुनता,
तुझे आगोश में लेने को बेताब बाहें,
जी करता कि उन कांपते होठों को छू लूँ ...
ये कोई ख़्वाब था शायद ...
हाँ ... ख़्वाब ही तो था ...
बरसों से तुझे देखा नहीं है,
इक बार जो गई तो फिर लौटी नहीं है ...
मगर मैं ... वहीं खड़ा हूँ ...
बारिश में भीगता,
अपनी ही आग में जलता.
ताउम्र ... तेरे इंतज़ार में ...

uohu ;kno*

[*]कवि जेएनयू में मुख्य सुरक्षा अधिकारी हैं।

dfork,¡

py¡ p¡i ---

चलूँ चुप बैठूँ कहीं
किसी रास्ते के किनारे
जहाँ हारते जाना
भूल सकूँ

सिसकियाँ और रोना
कहते हैं लोग
कमज़ोरी है
तो ज़रा मज़बूत बनूँ
हाँ ... उस कोने में
जड़वत उकड़ूँ बैठ जाऊँ
और दिलासों पर सिर रख
सो जाऊँ
डरावने मुर्दा सपने देखूँ

गीत गाऊँ
चीखूँ ... खिलखिलाऊँ
और जीतने वालों द्वारा
पागल ठहरा दिया जाऊँ एक दिन
जैसे वह
जो मेरे भीतर लगातार काँप रहा है ...

?k¡i Nk tkrk g¡ ---

घुप छा जाता है अँधेरा
गोया मेरी ही परछाई
आँखों में सुरमें की तरह
बह जाती हो ...

अँधेरे में
एक कलाई पकड़ता हूँ
और नब्ज बंद मिलती है

उस घर के सबसे आखिरी कोने में
जहाँ इतवार के दिन भी छुट्टी रहती है
पहुँचते ही मर जाती है आवाज़
और जब वहाँ से
निकलता हूँ बाहर
तब बनाए हुए चित्रों की चिंदियाँ
घुमड़ने लगती हैं
नामाकूल हवा में ...

vkun d¡ekj 'k¡Dy*

*कवि जेएनयू के पूर्व छात्र हैं।

ç.k

नदिया है तो धारा को भी उथल पुथल हो जाना होगा
कसम है खाई, प्रण जो लिया है, तूफ़ान में भी आना होगा
बहुत कठिन है राह, खुद को ये भी तो समझाना होगा
वज्र बनाकर तन–मन को, हर बाधा को निपटाना होगा।

चट्टानों को कौन गिराए, कौन उन्हें डगर से हिलाए
पर जो मन में ना घबराये, सुरंग पर्वत में वो बनाए
खुद को क्यूँ अकेला जाने, तुझ संग हैं कई दीवाने
ठोकर लगे तो उठ जा बन्दे, गिरकर भी तू हार ना माने
किस्मत भी दे साथ उसी का, जो इस सच को पहचाने
कायनात भी देख जुटी है आज तुझे ये समझाने

बहुत शिथिल रह चुका अब तुझे गाण्डीव तो उठाना होगा
असमंजस को त्याग वीर तू, रणभूमि में आना होगा
रोने से कुछ भी ना मिलेगा, स्वप्न पुष्प ऐसे ना खिलेगा
एक एक कतरे को मिल के विजय गान तो गाना होगा
अपने सपनों को जीवन की सच्चाई में लाना होगा
इस जीवन के अंत से पहले वादा तुझे निभाना होगा ...

vuJh i¡j.kk

कवयित्री जेएनयू में शोध छात्रा हैं।

e¡ vk¡j vki

मैं को पढ़ते हैं,
खुद के लिए पढ़ते हैं;
अपनों को पढ़ाते हैं,
मैं को भूल जाते हैं;
ऐसा क्यों ?
क्या यही है ? लिखना।
यदि हाँ तो
मैं बन्द करता हूँ; लिखना।
यदि नहीं तो
आप .....

I¡Hkk"k d¡ekj]

कवि जेएनयू में हिंदी के छात्र हैं।

dfork,¡

cLrh dHkh ugha cLrh

आपने कहा – तोड़ दो
सारी झुग्गी – बस्तियों को,
इनको यहाँ रहने का
पालन–पोषण करने का
अधिकार नहीं है।
ये समाज की गन्दगी हैं,
जलमग्न और ध्वस्त हो जाने दो इन्हें।
हमें पार्किंग के लिए
जगह चाहिए,
हमारी कारें कहाँ खड़ी होंगी ?
उनके लिए भी तो छत चाहिए
सलाह देने वाले सदस्यों की सभा ने
नेता की पुकार लगाई।
नेता बस्ती में आए नहीं
पूरी बस्ती ही पहुँच गई उनके पास।
नेता ने कहा –
जाओ नहीं टूटेंगी तुम्हारी बस्तियाँ
फिर धीरे से बोले –
केवल तीन महीने
शायद उन्हें मालूम था कि
बस्ती कभी नहीं बसती।

iRFkj dh ftthfo"kk

मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारे की शक्ल
मैं नहीं चाहता
मैं चाहता हूँ – पत्थर ही बने रहना,
चाहता हूँ – ज़मीन में धँसकर
जीवन को टटोलना,
नज़रबंद का खेल करने वाले
जादूगर को देखना,
मर्म पर आघात करने वाले
धर्मभेदी की मनोव्यथा को जानना
और जानना चाहता हूँ कि
समय की पत्तियाँ
समय से पहले क्यों
झर रही हैं ?

c`ts'k dqekj *

---

*कवि जेएनयू के छात्र हैं।

egt ,d [kcj

सोचती हूँ
ये बात इतनी हल्की क्यों हो गई है
कल तक थी तो चर्चा में
हर न्यूज चैनल, अखबार में
हाँ
जलाकर मारा गया था
एक आदमी
और
परोसी गई थी खबर
अखबार के किसी पृष्ठ
और किसी न्यूज चैनल पर
महसूस करती हूँ बड़ा शर्मसार
क्यों
क्योंकि वह जो था ईमानदार
कल उसे
जला दिया गया ज़िन्दा
न जाने कितने
ऐसे ही ज़िन्दा जलते हैं
और आते हैं समाचार पत्र के
पृष्ठ के किसी कोने में
छप जाते हैं
महज़ एक खबर बनकर

ty

पीने को जल नहीं
पर जब आती है आपदा
तो होता चारों तरफ जल ही जल है
दिल्ली की गलियों सड़कों पर लड़ते लोग
मयस्सर नहीं जिनको पीने के लिए साफ पानी
उधर बहा ले जा रहा है जल प्रवाह
कुदरत की गोद में बैठी सुन्दर वादियों को
प्रकृति और मनुष्य के बीच का ये असन्तुलन
बन गया है घातक दोनों के लिए
जिसे प्रकृति पहले ही समझ चुकी है
सुनाना चाहती है अपनी बेबसी
जिसे सुनकर भी मानव बढ़ चला है बहुत आगे
कर रहा है विकास
रच रहा है अपने लिए विनाश लीला

euh"kk

*कवयित्री जेएनयू में शोध छात्रा हैं

dfork,¡

VVs VdMs

देखने जो बैठी मैं इक दिन
आइने में ज़िन्दगी की तस्वीर को
कि अचानक हाथ से छूट गया आइना मेरा
और हो गया टुकड़े टुकड़े
हिम्मत करके जब उन बिखरे टुकड़ों में
झांक कर देखना चाहा तो
ज़िन्दगी की तस्वीर को भी
इसी तरह टूटे हुए पाया
जिस मुकम्मल आइने ने कभी
अहसास भी न होने दिया था
कि ज़िन्दगी भी टूट कर बिखर सकती है
आज उसी मुकम्मल आइने के
टूटे टुकड़ों ने इस रहस्य से
पर्दा उठाया और अहसास दिलवाया
कि ज़िन्दगी का अस्तित्व भी
इतना ही नाजुक है।

dle yrk 'kek *

eukdkeuk

मैंने अपने भारत को बहुत करीब से देखा है।
धरती माँ की गोद में सोते गरीब को देखा है।
जनगणमन की धुन पर मन में सैलाब उमड़ते देखा है।
फौजी की हिम्मत देख सर्द तूफान कांपते देखा है।
अहिंसा के पुजारी के आगे शीशों को नवते देखा है।
ईद, दिवाली, क्रिसमस पर सब धर्मों को मिलते देखा है।
एक भूखे बुजुर्ग की ज़िद पर सिंहासन हिलते देखा है।
वोट की ताकत के दम पर तख्तोताज़ पलटते देखा है।
खेलों में भी भारत को इतिहास को रचते देखा है।
भारत की बेटी को हमनें अंतरिक्ष में उड़ते देखा है।
अनपढ कबीर के दोहों पर पीएच.डी. करते देखा है।
भारत की प्रतिभा का संसार में लोहा मनते देखा है।
इंटरव्यू पर जाते बेटे को मीठा दही खिलाते देखा है।
बेटे की शहादत पर माँ को गर्व से मुस्काते देखा है।
बेटी की विदाई पर पिता को चुपचाप सुबकते देखा है।
बच्चों को खिलाकर सोती माँ को करवटें बदलते देखा है।
भूखे फकीर को भी पहले कुत्तों को खिलाते देखा है।
घर आए मेहमान को अपना कंबल देकर सुलाते देखा है।
विदेशियों को भी भागवद् गीता रामायण पढ़ते देखा है।
कान्हा की भक्ति और होली के रंग में रंगते देखा है।
मैंने मेरे देश में गाय, पेड़, पत्थर को पुजते देखा है।
इसके संस्कारों के आगे संसार को झुकते देखा है।
जो बरसों पहले होता था वो फिर आज देखना चाहता हूँ।
मैं अपने भारत में फिर से सुराज देखना चाहता हूँ।
देश पर मर मिटने वाले वो भगत देखना चाहता हूँ।
तुलसी, कबीर, रैदास से वो सन्त देखना चाहता हूँ।
भारत के नेता में फिर से ईमान देखना चाहता हूँ।
फाँसी के तख्ते पर सारे बेईमान देखना चाहता हूँ।
नालंदा, तक्षशिला से शिक्षा संस्थान देखना चाहता हूँ।
बच्चों में मूल्यों के ऊँचे प्रतिमान देखना चाहता हूँ।
माता–पिता की सेवा करे वो श्रवण देखना चाहता हूँ।
तन–मन–धन से देश सेवा का प्रण देखना चाहता हूँ।
हर युवक को अपने पैरों पर खड़ा देखना चाहता हूँ।
देश की प्रगति में कंधे से कंधा जुड़ा देखना चाहता हूँ।
बेटी के जन्म पर घर में हर्षोल्लास देखना चाहता हूँ।
भ्रूण हत्या जैसी बुराई का समूल नाश देखना चाहता हूँ।
नारी जिसकी अधिकारी है उसका सम्मान देखना चाहता हूँ।
हर एक क्षेत्र में उसे पुरुषों के समान देखना चाहता हूँ।
हर एक को मिलता रोटी, कपडा, मकान देखना चाहता हूँ।
हर दलित के चेहरे पर आत्मसम्मान देखना चाहता हूँ।
मैं अपने भारत को कर्ज़ से मुक्त देखना चाहता हूँ।
धन–धान्य और सम्पदा से युक्त देखना चाहता हूँ।
मैं हर भारतवासी को तन्दुरुस्त देखना चाहता हूँ।
बुरी नजर देश पर डाले उसे पस्त देखना चाहता हूँ।
सारे विश्व में अपने भारत की ऊँची शान देखना चाहता हूँ।
अगले जन्म में फिर खुद को इसकी संतान देखना चाहता हूँ।

vke idk'k lu

कवि जीवन विज्ञान संस्थान, जेएनयू में वरिष्ठ सहायक हैं।

*कवयित्री जेएनयू से सहायक पद से सेवानिवृत्त।

;knk d xfy;kj l

vkeçdk'k okYehfd dk t,u;u l vdknfed fj'rk

डॉ. राम चंद्र *

o Hk[k g
ij vkneh dk ekl ugh [kkr
l;kl g
ij yg ugh ihr

ux g
ij nljk dk uxk ugh djr
mud flj ij
Nr ugh g
ij nljk d fy,
Nr cukr gA

– ओमप्रकाश वाल्मीकि

जेएनयू परिसर की धरती को लोग इसलिए सलाम करते हैं, क्योंकि इसके कण–कण में अकादमिक जीवन का अद्भुत स्पंदन है। मोहक प्राकृतिक वादियों के बीच संवादधर्मी अकादमिक परिसर किसे प्रभावित नहीं कर सकता ? अंग्रेजीदाँ माहौल के बीच भारतीय भाषा केन्द्र अपने आपको हमेशा 'सेंटर' में रखता रहा है – साहित्य और राजनीति दोनों ही स्तरों पर। ऐसे ही 'सेंटर' से गहरा जुड़ाव रहा है ओमप्रकाश वाल्मीकि का। 30 जून 1950 को बरला, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में जन्मे ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 17 नवम्बर, 2013 को दुनिया को अलविदा तो कह दिया, लेकिन भारतीय भाषा केन्द्र उनके सर्जनात्मक कर्म को इतना आदर, सम्मान और अपनापा दे चुका है कि वे सर्वदा के लिए जेएनयू के रहेंगे। उनका अकादमिक रिश्ता यहां के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों से भी जुड़ा रहा। जेएनयू की दीवारों पर उनकी कविताएँ पढ़ी और सुनी जा सकती हैं।

जेएनयू और दलित साहित्य आंदोलन के लिए ऐतिहासिक दिन था 12 मार्च 1997; जब लिटरेरी क्लब, जेएनयू की ओर से साबरमती छात्रावास के मेस में रात के 9.30 से 1.30 बजे तक पहली बार वाल्मीकि जी का काव्य–पाठ और उस पर गम्भीर परिचर्चा हुई थी। उस समय उर्दू की शोध छात्रा अर्जुमंद आरा लिटरेरी क्लब की संयोजिका थीं और बजरंग बिहारी तिवारी और मैं कार्यकारिणी के सदस्य थे। डॉ. अर्जुमंद आरा और डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी इस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उस समय जेएनयू संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। वर्ग–संघर्ष में आस्था रखने वाले युवा मंडल आयोग को लेकर बंट गए थे और दलित साहित्य के नाम से भी खिन्न नज़र आ रहे थे। कुछ ऐसे युवा भी थे जो सक्रिय तो मार्क्सवादी खेमे में थे लेकिन सोच और कार्यशैली मार्क्सवादी विचारधारा के उलट थी। इस मामले में हमारा सेंटर तो गजब का रहा है; जहां संस्कार, कर्म और विचारधारा की द्वन्द्वात्मक विविध छवियां बनती–बिगड़ती रही हैं। ऐसे में बहुत कठिन था ओमप्रकाश वाल्मीकि का कार्यक्रम करा पाना। परंतु बड़ा संबल मिला जब भारतीय भाषा केन्द्र के दो प्राध्यापकों, डॉ. मैनेजर पाण्डेय और डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कार्यक्रम की अध्यक्षता तथा वक्तव्य के लिए सहमति दे दी। इनकी उपस्थिति ही तमाम विरोधियों के लिए काफी थी। कार्यक्रम सम्पन्न होने से पहले सेंटर के कुछ वरिष्ठ साथी इस कार्यक्रम का नकारात्मक प्रचार कर रहे थे – 'कविता, केवल कविता होती है। साहित्य, केवल साहित्य होता है। कविता, दलित कविता और साहित्य दलित साहित्य नहीं हो सकता।' ऐसे माहौल में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कार्यक्रम करा पाना चुनौती भरा था। परन्तु तमाम विरोधी छवि गढ़ने के बावजूद रोचक यह था कि वे सभी विरोधी मित्र उस कार्यक्रम में पधारे और उन्होंने परिचर्चा में भाग भी लिया। यही जेएनयू की अनूठी और खूबसूरत विशेषता है। इसी वैचारिक परिपक्वता के लिए जेएनयू जाना जाता है। उस दौर में दलित साहित्य के नाम पर नाक–भौं सिकोड़ने वाले वे सभी साथी आज दलित साहित्य पर शोध–पत्र और पुस्तकें छपवा रहे हैं। उनकी बौद्धिक बहसों में दलित साहित्य शामिल हो चुका है। वे सभी आज विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में लगाने की वकालत भी करते हैं। इस मानसिक बदलाव के पीछे दलित साहित्य के अन्य साहित्यकारों के अलावा ओमप्रकाश वाल्मीकि के सशक्त लेखन का बहुत बड़ा योगदान है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि 12 मार्च, 1997 से पहले भी महानदी छात्रावास में आ चुके थे। हमारी सीनियर डॉ. रजतरानी 'मीनू' अपने जीवन साथी डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' के साथ महानदी में रहती थीं। उनका शोधकार्य दलित साहित्य पर ही था। डॉ. बेचैन भी दलित लेखन में सक्रिय थे। आज डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं और डॉ. रजन रानी दिल्ली विश्वविद्यालय के ही कॉलेज में प्राध्यापक हैं और दलित साहित्य सृजन में संलग्न हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि से मुलाकात की कड़ी में यही लोग

*लेखक भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू में एसोसियेट प्रोफेसर हैं।

थे। उस समय मैं डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल के निर्देशन में 'प्रेमचंद का कथा साहित्य और दलित विमर्श' पर शोध कर रहा था। उस दौर में दलित विमर्श पर शोध करना बहुत चुनौती भरा था, क्योंकि एक तो इस तरह के साहित्यिक आंदोलन का नकार और दूसरा, सामग्री का अभाव था। इसीलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे दलित लेखकों से सहज ही मेरा संपर्क बढ़ने लगा था।

साबरमती छात्रावास के मेस में 12 मार्च 1997 को सम्पन्न होने वाला ओमप्रकाश वाल्मीकि का काव्य–पाठ और परिचर्चा दलित साहित्य आंदोलन के संदर्भ में ऐतिहासिक छाप छोड़ गया। काव्य–पाठ शुरू होने से पहले डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने वाल्मीकि जी का स्वागत करते हुए उनकी कविताओं, कहानियों तथा आत्मकथा 'जूठन' पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए अछूतानंद से लेकर आजतक के दलित लेखन में आए बदलाव की ओर संकेत करते हुए दलित साहित्य से संवाद करने पर विशेष जोर दिया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपना काव्य–पाठ शुरू करने से पहले अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा था कि – "मेरे लिए कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा और गतिशीलता की संवाहक है, जो हमारी पीड़ाओं, हमारे दुःख–सुख की अभिव्यक्ति है, जिसमें हम अपने वर्तमान का प्रतिबिम्ब शिद्दत के साथ देख सकें। जो जीवन की विद्रूपताओं से जूझने का हौसला दे। दलित कविता स्वतंत्रता और सामाजिक बदलाव की पक्षधर है। दलित कविता विरोध और नकार के साथ आदमी को आदमी की तरह पहचानती है।" ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'ठाकुर का कुआँ' नामक कविता से अपना काव्य–पाठ आरम्भ किया था –

pYgk feêh dk
feêh rkykc dh
rkykc Bkdj dkA

Hk[k jkVh dh
jkVh ckt j dh
ckt jk [kr dk
[kr Bkdj dkA

cy Bkdj dk
gy Bkdj dk
gy dh eB ij gFkyh viuh
Qly Bkdj dhA

dvk Bkdj dk
ikuh Bkdj dk
[kr&[kfygku Bkdj d
xyh&egYy Bkdj d
fQj viuk D;k l
xko l
'kgj l
n'k l

पढ़ी/सुनाई गईं उनकी अन्य कविताओं के शीर्षक हैं – घृणा तुम्हें मार सकती है, आदिम रूप, मेरे पुरखे, अच्छे लगते हैं, जाति, ज्वालामुखी, बस्स ! बहुत हो चुका, रास्ते की धूल अभी मौजूद है, चोट, कुदाल, शंबूक का कटा सिर, तनी मुट्ठियां, सदियों का संताप आदि।

काव्य–पाठ के बाद परिचर्चा के दौरान अपने वक्तव्य में डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने वाल्मीकि जी की कविताओं को घनीभूत पीड़ा से युक्त बताते हुए इसे भारतीय संस्कृति और इतिहास का वैकल्पिक पाठ कहा। उन्होंने आगे कहा कि इनकी कविता में केवल संवेदना और अनुभूति ही नहीं है, बल्कि गहरे स्तर पर पुष्ट करता हुआ उसमें गहन विचार भी है। उस कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने कहा कि वाल्मीकि जी की कविताओं में दलित अस्मिता का बोध है, साथ ही दलित चेतना से पूरे भारतीय समाज को देखने की कोशिश भी है। उन्होंने कहा कि दलित ही लिख सकते हैं दलित यातना को। स्वानुभूति और सहानुभूति में फर्क है। कार्यक्रम के अंत में प्रश्नोत्तर के दौरान दलित साहित्य के संदर्भ में वाल्मीकि जी ने विचारोत्तेजक जवाब दिए थे।

इसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि का हमारे केन्द्र से रिश्ता गहरा जुड़ता चला गया। दलित साहित्य से जुड़े शोध कार्यों के मूल्यांकन हेतु वे भारतीय भाषा केन्द्र में आते रहे। केन्द्र के सभी प्राध्यापकों से उनका आत्मीय जुड़ाव होता चला गया। धीरे–धीरे उनका साहित्यिक कर्म यहां शोध का हिस्सा बन गया। उनकी आत्मकथा 'जूठन', कहानी संग्रह 'सलाम' और 'घुसपैठिए', कविता संग्रह 'बस्स ! बहुत हो चुका', और 'अब और नहीं, आलोचनात्मक कृतियां 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' तथा मुख्यधारा और दलित साहित्य' पर शोध कार्य हमारे केन्द्र ने कराया है। अभी उनके संपूर्ण लेखन पर पीएच.डी. हेतु शोध कार्य हो रहा है। भारतीय भाषा केन्द्र के एम.ए. के पाठ्यक्रम में उनकी आत्मकथा, कहानियां, कविताएं और नाटक पढ़ाए जाते हैं। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व हमारे केन्द्र का हिस्सा बन चुका है। उनका दुनिया को अलविदा कह जाना अखरता तो है परन्तु हमारे विश्वविद्यालय के लिए सम्मान की बात यह है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के विचार हमारी बौद्धिक थाती के रूप में हमारे केन्द्र और विश्वविद्यालय में सुरक्षित हैं। उनकी कृतियों के आलोक में सामाजिक विज्ञान संस्थान की कक्षाओं में संवाद होता है। उनकी रचनात्मकता यहां के राजनीतिक, सामाजिक और

सांस्कृतिक संगठनों का हिस्सा है। इसलिए वे जेएनयू में सर्वदा ज़िन्दा रहेंगे। भारत के रक्षा मंत्रालय के प्रतिष्ठान में अधिकारी संवर्ग से सेवानिवृत्ति के तीसरे वर्ष में ही उनका गुजर जाना भारतीय साहित्य की बहुत बड़ी क्षति है। बहुत कुछ था जिसे उन्हें पूरा करना था। जेएनयू की युवा पीढ़ी से उन्हें बड़ी उम्मीदें रही हैं जिसे इस परिसर को पूरा करना है।

सन् 1997 से अब तक उनसे और उनकी कृतियों से मेरा अनवरत रिश्ता जुड़ा हुआ है। उनसे जो व्यक्तिगत और साहित्यिक जुड़ाव था, उसी ने हमें साहित्य को नए परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने का विवेक दिया। 11–13 अप्रैल, 2008 में चंद्रपूर, महाराष्ट्र में आयोजित 28वें अस्मितादर्श सम्मेलन के वे सम्मेलनाध्यक्ष थे। वहां उनकी अध्यक्षता में मुझे भी वक्ता के तौर पर बोलने का मौका मिला था। यात्रा और विविध साहित्यिक मंचों पर कई बार हम एक साथ थे। उनकी संगत में साहित्य और समाज को समझने का एक भिन्न अनुभव रहा। वे एक चेतनाशील, सिद्धहस्त साहित्यकार और सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। समतापरक समाज की परिकल्पना उनके साहित्य का मुख्य स्वर था। आज उनकी कृतियों पर शोध कराते हुए तथा उनको पढ़ते एवं पढ़ाते हुए मुझे गर्व और आत्मसंतोष का बोध होता है। उनकी ढेरों चिट्ठियां मेरी बौद्धिक पूंजी हैं, जो दायित्वबोध का एहसास कराती हैं। 12 मार्च, 1997 के कार्यक्रम के बाद देहरादून से वाल्मीकि जी ने 10 अप्रैल, 1997 के पत्र में लिखा था कि "**t,u; dk;Øe dh lQyrk l ejk vkRefo'okl c<k gA cnyko d lrr l?k"k e vki lc viuh&viuh Hkfedk ifrc) rk vkj lei.k Hkko l fuHkkr jgx rk ;g dkjok #dxk ugh**" उनकी चिट्ठियों की ऐसी पंक्तियों को पढ़ते हुए आंखें नम हो आती हैं। उनकी स्मृति को शत् शत् नमन्।

iM]
re iM mlh oDr rd
iM gk]
tc rd ; gj iÙk
fgy jg g
rEgkjh Vgfu;k ijA

iM]
rEgkjk gjkiu mlh oDr rd g
tc rd ; iÙk lgh lyker g
rEgkjh Vgfu;k ijA

iM]
re mlh oDr rd iM gk]
tc rd ; iÙk
rEgkj lkFk g
iÙk >jr gh
iM ugh BB dgykvkx
thr th ej tkvkx !

– ओमप्रकाश वाल्मीकि

iRFkjk ij lyxrk ykfdd lkfgR; % xxk <kck

आनंद कुमार शुक्ल*

सच मानिए, गंगा ढाबे पर कुछ भी लिखना–कहना, अपना सिर फुटवाना है। ऊपर–ऊपर से यह जितना रूमानी, सरस और भावविभोर दिखता है, भीतर–भीतर उतना ही कपटी और राजनीतिक है। आपको पता भी नहीं चलेगा कि आपकी बेवकूफ़ियों के जुमले देश के तमाम विश्वविद्यालयों में कैसे प्रचलित हो गए।

शाम चार बजे से पहले यह बंद ढाबा दुनिया की सबसे उबड़–खाबड़ जगह होता है। गोकि ढाबा खुलता है और साँझ ढलने के साथ–साथ अँधेरा तमाम बदसूरतियों को ढँकने लगता है। फिर जब, दुनिया की सारी बदसूरत बातें खत्म हो जाती हैं, एक नए इल्हाम में रोजाना की तरह कोई नई खूबसूरती सामने आती है। खूबसूरती शायद दुनिया की सबसे ख़तरनाक़ चीज़ होती है !

बागर्थ की तरह जेएनयू और गंगा ढाबा आपस में गुत्थम–गुत्थ हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना करना मुश्किल है। पथरीले रास्तों पर पसरी अलमस्त फैशनेबुल ज़िंदगी शाम से आधी रात तक इसी बेढब गँवई ढाबे पर चहकती–झगड़ती रहती है। और, कुछ ऐसे भी संत यहाँ विराजते हैं, जो न कभी चहकते हैं, न किसी से झगड़ते हैं। 'पलकों पर उठाने' वाला मुहावरा इन्हीं की निर्मल आँखों में साकार होता है। किसी घिसटी हुई चट्टान पर धूनी रमाए इन महात्माओं का वृंद गंगा हॉस्टल से निकली हर सुंदरी को अपनी आँखों में बसाकर कमल कॉम्पलेक्स तक छोड़ता है और फिर, वहाँ से जो रूपसी सबसे पहले आती दिखती है, उसे वृंद के वृंद साधु अपनी पलकों पर बिठाकर उसके गंतव्य तक पहुँचा आते हैं।

ढाबे के ठीक सामने, सड़क के उस पार पूरब में झेलम लॉन है। यानी इस पूरब से उस पश्चिम के बीच जेएनयू की लगभग समूची राजनीति–सांस्कृतिक गतिविधियाँ संचालित होती है। सारे राजनीतिक फलसफ़ों का यही प्रस्थान बिंदु है। प्रेसिडेंशियल डिबेट यहीं होती है और राष्ट्रीय मुशायरा भी। हर चंद रोज बाद, पूरब–पश्चिम के मेल वाली लपलपाती सड़क के ढाबे वाले छोर से सैकड़ों मशालें क्रांति जनने का रूख अख्तियार किए दक्षिण दिशा की ओर चल देती हैं। और ... मशालें लौटकर वापस नहीं आतीं। सुहाने रास्ते पर अपने–अपने घर लौट जाने का स्वार्थ युवाओं को क्रांति के मार्ग पर वापस लौटने नहीं देता। जो लौट पाते हैं, वे या तो राजनीति की सिल पर घुँटे नेता होते हैं या दुनियावी मुहावरे के 'पगले'। जेएनयू इन्हीं पगलों की सैद्धांतिक राजनीति को सीने से चिपटाए बाबा गंगनाथ मार्ग पर भटकता रहता है।

गंगा ढाबे पर जो एक रस सभी विरोधी खेमों को आपस में मिला देता है, वह है चाय–रस। दिल्ली की सबसे सस्ती, सर्वहारा, रद्दी चाय यहीं मिलती है। लेकिन क्या मज़ाल कि कोई यहाँ आए और चाय पिए बिना चला जाए। ऐसा जाना, बैरंग जाना समझा जाता है।

चाय गटकने के लिए चखने के तौर पर यहाँ कई चीज़ें बिकती हैं। और, सारे चखने की क़ीमत तथा स्वाद के स्तर पर ग़रीब ही ठहरते हैं। यह बात और है कि अब कुछ लोग यहाँ के समोसे को इलाहाबादी समोसे से थोड़ा ही कमतर मानने लगे हैं।

गंगा ढाबा वास्तव में केवल गंगा ढाबा नहीं है। बिट्टू भइया की गुमटी, रामसिंह ढाबा और मौर्या बुक स्टॉल के बिना यह उतना ही अधूरा है, जितना दो हाथ और पाँव के बिना आदमी। रामसिंह ढाबा और मौर्या बुक स्टॉल तो पहले की तरह ही चल रहे हैं, लेकिन बिट्टू भइया की गुमटी शायद बहुत जल्द उजाड़ होने वाली है।

बात दरअसल यह है कि कोई तीन–साढ़े तीन बरस पहले चंद नशामुक्त परिव्राजकों के चीखने–चिल्लाने पर समूचा कैम्पस शुद्ध कर दिया गया। सिद्धांत गढ़ा गया कि चुपचाप पियो, खींचो, खाओ, लेकिन बेचो नहीं। और बस, बिट्टू भइया की गुमटी उजड़ गई। अब वे चॉकलेट, टॉफी, रीचार्ज कूपन बेचने लगे हैं। अगर इस दुनिया से एक गुमटी उजड़ जाएगी तो क्या जेएनयू परिवार इसका शोक मनाएगा ? शायद हाँ !

जो लोग जेएनयू कैम्पस में ठाठ से रहते हैं, उनमें से बहुत सारे इसकी अहमियत को ठीक से महसूस नहीं कर पाते। क्या है यह ? बस यही कि शाम में जाकर एक चाय पी ली या रात में भूख लगी तो दो पराठे खा आए। कुछ देर दोस्तों से गप–शप कर लो, बस ! फिर, अब तो कैम्पस के अंदर ही कई जगमगाते रेस्तरा खुल चुके हैं। 24 X 7 तो रात–दिन खुला रहता है। पैसा फेंको और जब जो मन करे, खाओ। आख़िर मिलता क्या है गंगा ढाबे पर ?

पीएच.डी. जमा करके हर रिसर्च स्कॉलर अंततः यहीं आता है – 'अल्मा माटर' – अपनी पाल्स माँ से विदा लेने। कृतज्ञ डबडबाई आँखों में भविष्य के सपने होते हैं और आशंकाओं के लाल डोरे भी। पाल्य माँ यही आशीष देती है – "प्रविष्ट हो जीवन–रण में। अपनी योग्यता से सम्मान प्राप्त करो, लेकिन अहंकार में मत डूबो। सीखते रहो और आगे बढ़ते रहो। सपने देखो, लेकिन उन सपनों में केवल तुम न बसो। ऐसा बनो कि तुम्हारी माँ गर्व से सिर उठाकर पूरी दुनिया में सम्मानित हो सके।"

और, जीवन–रण में उतर चुके पूर्व–छात्र बार–बार फिर यहीं लौटते हैं – रूमानियत भरी एक शाम गुज़ारने, उस सपनीली युवावस्था को पुनः जीने या पाल्य माँ से आशीर्वाद लेने। ढाबा खुशी से झूम उठता है। बहस–मुबाहिसे के दौर चाय की हर चुस्की के साथ गर्म होते जाते हैं। माहौल अपनी मदहोशी में एक–एक आगंतुक को बुला–बुलाकर कोई न कोई वैचारिक सौगात सौंपता जाता है। और ... ढाई–तीन बजे नीरव मध्य रात्रि में, जब समय कुत्तों के साथ कुकुआने लगता है, गंगा ढाबा अरावली पहाड़ी पर ढुलक कर सो जाता है – अगली साँझ के सुनहरे भविष्य का स्वप्न देखते हुए।

अलहदा तो हे यह ढाबा ! आकर चुपचाप बैठ जाइए और बस महसूस कीजिए। राजनीति के द्विघातीय समीकरणों की वास्तविकता तथा घिनौने सचों की सामाजिक भागीदारी सैद्धांतिक रूप से आपको समझ में आने लगेगी। और भरोसा रखिए – आपका असल ज़िंदगी में होना भी यह ढाबा अपनी स्मृति में ज़रूर रखेगा ... कलेजे के टुकड़े की तरह !

लेखक जेएनयू के पूर्व छात्र हैं।

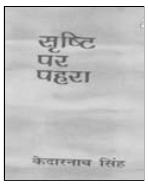

ogh ijfcgk

प्रियदर्शन*

केदारनाथ सिंह समकालीन हिंदी कविता के वरिष्ठतम कवियों में हैं। कुंवर नारायण को छोड़ कर दूसरा नाम तत्काल याद नहीं आता, जो इस वरिष्ठता और निरंतर सक्रियता में उनसे प्रतिस्पर्द्धा कर सके। उनका पहला कविता संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' आए आधी सदी से ज्यादा समय हो गया। साठ साल पहले उन्होंने पाल एलुआर की कविता 'लिबर्टी का अनुवाद किया था।

जो कवि कविता के साथ इतना लंबा समय गुजार दे और लगातार लिखता रहे, कविता उसके लिए विधा नहीं रह जाती, व्यक्तित्व बन जाती है; अभिव्यक्ति नहीं रह जाती, अस्तित्व की शर्त बन जाती है। यह आती–जाती सांस जैसी हो जाती है, जिसकी बेआवाज लय हमेशा साथ बनी रहती है। अपने आठवें कविता संग्रह सृष्टि पर पहरा तक आते आते केदारनाथ सिंह कविता नहीं, अपने को लिखने लग जाते हैं। लेकिन क्या अपने को लिख देने से कविता बन जाती है ? लिखने से पहले खुद को सिरजना पड़ता है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं को पढ़ते हुए यह बार–बार खयाल आता है कि खुद को सिरजने की यह प्रक्रिया उनके भीतर न जाने कब से चल रही है। इन कविताओं में पुरानी कविताओं की अनुगूंजें खूब सुनाई पड़ती हैं, लेकिन किसी दुहराव की तरह नहीं, बल्कि उस निरंतरता की तरह, जो केदारनाथ सिंह को लगातार बना रही हैं, बार–बार नए सिरे से रच रही हैं। 1980 में जो घास टूटे हुए ट्रक के पहिए बदलने को बेताब थी, अब 'दुनिया के तमाम शहरों से/खदेड़ी हुई जिप्सी है वह/तुम्हारे शहर की धूल में/अपना खोया हुआ नाम और पता खोजती हुई' तमाम दरवाजे पीट रही है। अपने खास अंदाज में केदारनाथ सिंह इस घास के लिए थोड़ी–सी जगह मांगते हैं : 'आदमी के जनतंत्र में/घास की सवाल पर/होनी चाहिए लंबी एक अखंड बहस/पर जब तक वह न हो/शुरुआत के तौर पर मैं घोषित करता हूं/कि अगले चुनाव में/मैं घास के पक्ष में/मतदान करूंगा/कोई चुने या न चुने/एक छोटी–सी पत्ती का बैतर उठाए हुए/वह तो हमेशा मैदान में है।'

यह केदारनाथ सिंह की कविता का अपना जनतंत्र है, जिसमें उनके चुनाव की प्राथमिकताओं को समझा जा सकता है। वे रौंदी जा रही घास को नागरिकता ही नहीं, उसका नेतृत्व भी स्वीकार करने को तैयार है। यह बनायास नहीं है कि यह किताब कवि ने समर्पित की है 'अपने गांव के उन लोगों को, जिन तक यह किताब कभी नहीं पहुंचेगी'।

लेकिन केदारनाथ सिंह ने यह गांव इस किताब में बसा डाला है। पैंतीस साल पहले लिखी गई कविता 'मांझी का पुल' में हल चलाते और खैनी की तलब के वक्त रुक कर मांझी के पुल पर नज़र डालते लालमोहर की मृत्यु की खबर इस संग्रह में आती है। कभी सन सैंतालीस को याद करते हुए नूर मियां का जिक्र छेड़ने वाले केदारनाथ सिंह इस संगह में गफूर मियां से मिलने और उनकी तस्वीर लेने की गुजारिश करते हैं, जिनकी शतायु हो चुकी झुर्रियों में एक पूरी बस्ती बसती है। कवि का इसरार है 'अगर इस बस्ती से गुजरो/तो जो बैठे हों चुप/उन्हें सुनने की कोशिश करना/उन्हें घटना याद है/पर वे बोलना भूल गए हैं।

कविता अचानक याद दिलाती है कि वे बस्तियां हैं, मगर हम उन्हें देखना भूल गए हैं – पेड़ों में दबी कहानियां, पत्थरों में हड़प्पा के बसे होने की संभावना, एक दमदार आवाज वाली बुढ़िया का घर, जिसको लेकर कवि का प्रस्ताव है कि उसे राष्ट्रीय धरोहर घोषित कर दिया जाए।

नहीं, यह सिर्फ नॉस्टैल्जिया नहीं है, यह गांव छोड़ कर शहर में बस गए कवि का दुख भरा विलास नहीं है, यह सभ्यता विमर्श है, जो हमारे समय का कवि कर रहा और कविता बन रही है। यह कवि शब्दों को उनके अर्थ लौटाता है, भाषा को उसकी कविता और जीवन को उसकी भाषा। भाषा भी एक घर है, जहां कवि रहता है। भाषा को लेकर शायद हिंदी की कुछ बेहतरीन कविताएं केदारनाथ सिंह के पास हैं। 'देवनागरी' में वे सभ्यता की वर्णमाला रच देते हैं, मनुष्य की हंसी और उसके हाहाकार को एक साथ रखते हुए : 'यह मेरे लोगों का उल्लास है/जो ढल गया है मात्राओं में/अनुस्वार में उतर आया है कोई कंठावरोध।' वे सारी दुनिया में बोली जा रही हिंदी का सपना देखते हैं और कहते हैं : 'बिना कहे भी जानती हैमेरी जिह्वा/कि उसकी पीठ पर भूली हुई चोटों के/कितने निशान हैं/कि आती नहीं नींद उसकी कई क्रियाओं को/रात–रात भर/दुखते हैं अक्सर कई विशेषण।'

*समीक्षक चर्चित पत्रकार हैं।

भोजपुरी पर इसी नाम से उनकी कविता तो शायद उनकी सर्वोत्कृष्ट कविताओं में एक है – वह मास्टर स्ट्रोक इस कविता में भी दिखता है, जिसने केदारनाथ सिंह को हिंदी के सार्वकालिक शीर्षस्थानीय कवियों के बीच रखे जाने की पात्रता दी है। वे लिखते हैं; 'इसकी क्रियाएं/खेतों से आई थी/संज्ञाएं पगडंडियों से/बिजली की कौंध और महुए की टपक ने/इसे दी थी अपनी ध्वनियां/शब्द मिल गए थे दानों की तरह/जड़ों में पड़े हुए/...किताबें/जरा देर से आईं/इसलिए खो भी जाएं/तो डर नहीं इसे/क्योंकि जबान–/इसकी सबसे बड़ी लाइब्रेरी है आज भी।'

भाषा के जरिए बनने वाली निजी पहचान और सार्वजनिक दुविधा को कवि कहीं कुछ हलके और कहीं बहुत संवेदनशील आवाज में संग्रह की कुछ अन्य कविताओं में भी रखता है। 'गमछा और तौलिया' एक स्तर पर बहुत मामूली–सी कविता जान पड़ती है, लेकिन एक ही साथ सूखते गमछे में निहित भदेसपन और तौलिए में निहित आभिजात्य पर प्यारी–सी चुटकी दिख पड़ती है : 'मैने सुना–/तौलिया गमछे से कह रहा था/तू हिंदी में सूख रहा है/सूख/मैं अंग्रेजी में कुछ देर/झपकी ले लेता हूं।'

तौलिए और गमछे को इस तरह बतियाते सुननने और कहने के लिए कान और कलेजा दोनों चाहिए। लेकिन यह कान और कलेजा आता कहां से है ? शायद स्मृति के अपने जुड़ाव से, परंपरा की अपनी पहचान और उस पर अपने भरोसे से, और उस संवेदनशील आलोचनात्मक विवेक से, जिसमें आंख न बीते हुए कल को लेकर मुंदी हुई हो न मौजूदा आज में खोई हुई।

'जैसे दीया सिराया जाता है' इसी कलेजे के साथ लिखी हुई एक मार्मिक कविता है, जो मां से शुरू होती है, गंगा नहा आने की उसकी जिद से। जब सारा शहर कलकत्ता सो रहा था तब कवि हथेलियों में उठा कर मां को लहरों में बहा देता है और फिर उसे याद आता है ' बिना वीजा पासपोर्ट के तमाम पचड़ों से भरा यह सफर कैसे पूरा करेगी मां। अब कवि का बयान सुनिए : 'तो मैंने भागीरथी से कहा/मां का खयाल रखना/उसे सिर्फ भोजपुरी आती है।' जिन्हें सिर्फ कविता आती है, वही समझ सकते हैं कि यह मां को, भागीरथी को और भोजपुरी को सबको बचा लेने का, सबको जोड़े रखने का जतन है।

इस जतन में मां, भागीरथी और भोजपुरी अलग–अलग नहीं है। हिंदी और भोजपुरी भी अलग–अलग नहीं है। 'देश और घर' में कवि लिखता है : 'हिंदी मेरा देश है/भोजपुरी मेरा घर/...मैं दोनों को प्यार करता हूं/और देखिए न मेरी मुश्किल/पिछले साठ बरसों से/दोनों को दोनों में/खोज रहा हूं/' यह परंपरा है जो कवि को बना–बचा रही है, यह कवि है जो परंपरा को बना–बचा रहा है।

इस परंपरा की ढेर सारी पदचापें पूर संग्रह में जैसे जगह–जगह महसूस की जा सकती हैं। कुंभनदास से लेकर निराला के अलावा केदारनाथ की कविताओं में बार–बार दिखने वाले त्रिलोचन–शमशेर भी हैं और एक जगह तो राजेंद्र यादव भी। एक कविता ज्यॉ पाल सार्त्र पर भी है। यह एक उदार परंपरा है, जिसमें संकीर्णताओं के लिए जगह नहीं है, जहां वक्रताएं सरल और तरल होकर कविता में ढल जाती है।

संग्रह में कई ऐसी कविताएं है।, जो बिल्कुल किसी 'उस्ताद' के हाथों से ढल कर निकली हुई मालूम होती है। अचानक एक बेतुका–सा खयाल आता है कि केदारनाथ सिंह हिंदी कविता की अपनी शैली में हमारे मीर तकी मीर हैं – बेहद सादा जुबान में अपनी–आपकी बात कहते–कहते वे कुछ ऐसा कह जाते हैं, जिसकी रोशनी में अनुभवों को नए सिरे से पहचानने का सुख मिलता है। पांवों के बारे में वे लिखते हैं : 'चलना उनकी भाषा है/बैठना उनकी चुप्पी' और कविता के अंत में हौले से कहते हैं : 'कभी पढ़ना ध्यान से–/रास्ते ये पंक्तियां हैं/जिन्हें लिखकर/भूल गए हैं पांव।'

ये हिंदी के एक बड़े कवि की कविताएं हैं। ऐसी कविताएं लिख सकने वाले कवि को उनकी भाषा यह हक भी देती है कि कभी–कभार वे ढीली–ढाली पंक्तियां भी लिख डालें, कविता को बनावट और कसावट की अनिवार्यता से मुक्त रखें और अपने केदारनाथ सिंह होने की छूट ले लें। कुछ ऐसी छूट चाहती कविताएं यहां हैं, लेकिन अस्सी बरस के इस कवि का काव्य–वितान इतना सुघड़, प्रदीर्घ, और विलक्षण है कि कई और कविताएं उद्धृत करने के मोह से बचना पड़ता है। बहरहाल, कविता में सारे संसार की परिक्रमा करने वाले इस कवि का असली संसार वह पुरबिया दुनिया है, जो उनकी आत्मा में बसी है।

संग्रह की कविता 'एक पुरबिहा का आत्मकथ्य' में वे कहते हैं, इस समय यहां हूं/पर ठीक इसी समय/बगदाद में जिस दिल को/चीर गई गोली/वहां भी हूं/हर गिरा खून/अपने अंगोछे से पोंछता मैं वही पुरबिया हूं/जहां भी हूं।'

(जनसत्ता से साभार)

---

lf"V ij igjk % केदारनाथ सिंह। राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, मूल्य 250/– रुपये

t;'kdj izlkn xzFkkoyh

स्नेहसुधा*

जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली का संपादन ओमप्रकाश सिंह ने सात खंडों में किया है। पहले और दूसरे खंड में जयशंकर प्रसाद की कविताओं का संकलन किया गया है। तीसरे और चौथे खंड में प्रसाद का नाट्य साहित्य संकलित है। पाँचवें खंड में कहानियाँ संकलित हैं तो छठे खंड में उपन्यास। अंतिम खंड सातवाँ है। इस खंड में प्रसाद के निबंध साहित्य, आँसू का प्रथम संस्करण, पत्रसाहित्य, शब्द चित्र, हस्तलेख, प्रसाद की मृत्यु पर प्रकाशित समाचार और अग्रलेख के संकलन के साथ निराला, मैथिलीशरण गुप्त और प्रभाकर माचवे द्वारा कविता रूप में रचित श्रद्धा सुमन को संकलित किया गया है।

ग्रंथावली की भूमिका में प्रसाद का संक्षिप्त जीवन और रचना संसार का परिचय दिया गया है। रचनाकार को जानने के लिए उसके जीवन के बारे में आधारभूत जानकारी होना आवश्यक है। कहना न होगा कि रचनाकार के जीवन से उसकी रचना के सूत्र मिल जाते हैं। कोई भी रचनाकार अपने जीवन की परिस्थितियों और परिवेश से प्रभावित होता है। ऐसे में रचनाकार का जीवन परिचय आवश्यक बन जाता है। जयशंकर प्रसाद जगन साहू (सुंघनी साहू) के वंशज थे। प्रसाद सुंघनी साहू के पुत्र देवीप्रसाद की छोटी संतान थे। प्रसाद की बचपन से कविता लिखने में रुचि थी। पिता की मृत्यु के बाद बड़े भाई शम्भुरत्न के साथ प्रसाद सुंघनी साहू की दुकान में बैठने लगे। खाली समय में वे कविता लिखा करते। बड़े भाई को इससे कारोबार का नुकसान नजर आया। उन्होंने प्रसाद के कविता लेखन पर पाबंदी लगा दी। प्रसाद अब छिप छिप कर कविता लिखने लगे। समयानुकूल उन्होंने कई समस्यापूर्ति की। उनके यश का पता बड़े भाई को लगा तो उन्होंने प्रसाद पर लगायी पाबंदी हटा दी। प्रसाद को बड़े भाई की छत्रछाया में रहने का अधिक अवसर नहीं मिला। माता–पिता की मृत्यु के बाद बड़े भाई की भी मृत्यु हो गयी। 17 वर्ष की अवस्था में परिवार का दायित्व प्रसाद के ऊपर आ गया। उन्होंने परिवार और साहित्य दोनों के प्रति न्याय किया और अपना सर्वोत्तम देते रहे।

प्रसाद पर धार्मिक होने का आरोप लगाया गया है। प्रसाद और उनका परिवार शैव था। उनके मकान से लगा हुआ एक शिव मंदिर है। यह मंदिर प्रसाद के परिवार द्वारा बनाया गया था। प्रसाद ने हिंदू होने और शैव धर्म में अपनी आस्था से इनकार नहीं किया है। उन्होंने धर्म का उपयोग जनता में जागृति लाने के लिए किया है। वस्तुतः प्रसाद मानवतावाद के पोषक थे। 'कामायनी' में उन्होंने मानवतावाद की इसी चेतना को विस्तार देते हुए मनु से "अपने सुख को विस्तृत करने और सबको सुखी बनाने" की बात की। इस महाकाव्य में प्रसाद ने शैव धर्म के माध्यम से आनंदवाद की स्थापना की बात की है। ध्यातव्य है कि उनका मूल उद्देश्य शैव धर्म का प्रचार करना नहीं था। शैव धर्म साधन बनकर आया है, साध्य तो मानवतावाद की स्थापना है। कहना न होगा कि व्यक्ति की आस्था जिस धर्म में होती है वह उसकी रगों में बसता है। ऐसे में उस धर्म की विशेषताएँ उसे याद रहती है। इसी कारण उसके लेखन में स्वभावतः वह धर्म विन्यस्त हो जाता है। 'कंकाल' उपन्यास में प्रसाद ने वर्ग भेद पर आधारित पाखंडी हिंदू समाज पर व्यंग्य किया है। इस उपन्यास में प्रसाद धर्म के ठेकेदारों और अभिजात्य वर्ग के शैतानी रूप को चुनौती दी है। प्रसाद ने इस उपन्यास में धार्मिक संस्थानों में धर्म की आड़ में व्याप्त धार्मिक आडंबरों की पोल खोली है। इस प्रकार प्रसाद ने धर्म के सबल पक्षों को अपनाने पर जोर दिया उसकी विकृतियों पर नहीं।

प्रसाद के समकालीन साहित्यकार उनसे वैचारिक मतभेद भले रखें पर उनके व्यक्तित्व से कोई विरोध नहीं रखते थे। प्रसाद का मिलनसार और निरभिमानी स्वभाव सबको साथ लेकर चलता था। प्रसाद साहित्य सेवा का कोई पारिश्रमिक नहीं लेते थे। प्रसाद के लेखन की शुरुआत ब्रजभाषा में कविता लेखन से हुई। उस कालखंड में ब्रजभाषा ही प्रमुख काव्यभाषा थी। प्रसाद की रचनाओं पर 'उर्दू शतक' का बहुत प्रभाव पड़ा है। उस कालखंड में धीरे धीरे काव्य में खड़ी बोली का प्रवेश हो रहा था। प्रसाद की रचनाओं में इस आगमन व परिवर्तन के संकेत मिलते हैं। 1909ई. –1936ई. तक फैले रचनाकाल में प्रसाद ने विविध विधाओं में लेखनी चलायी। एकांकी, नाटक, काव्य–नाटक, काव्य, कहानी, उपन्यास और निबंध आदि विधाओं में प्रसाद ने लेखन किया।

समीक्षक भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू में शोध छात्रा हैं।

ग्रंथावली की भूमिका में ओमप्रकाश सिंह ने प्रसाद की रचनाओं के बारे में सूचना देने के साथ उसका परिचयात्मक विश्लेषण किया है। इससे पाठकों को प्रसाद का रचना संसार समझने का एक दृढ़ आधार मिल जाएगा। ग्रंथावली में प्रसाद की सभी रचनाओं को संकलित करने का प्रयास किया गया है। कुछ रचनाएँ असंकलित थीं। उन्हें पहली बार संकलित किया गया है। उनमें 'वभ्रुवाहन' नाटक का संकलन ग्रंथावली के तीसरे खंड में किया गया है। ग्रंथावली के दूसरे खंड में प्रसाद की असंकलित कविताएँ को भी संकलित कर लिया गया है। ऐसी कविताओं की संख्या पैंतीस है।

प्रसाद संकोची स्वभाव के थे। वे अपनी बात दूसरों से बहुत कम साझा करते थे। इसलिए उनके पत्र बहुत कम संख्या में मिले हैं। इसका संकेत देते हुए संपादक ने लिखा है कि जो पत्र मिले भी हैं वे अधिकांशतः 'नोटिस' या 'रुक्के' के रूप में हैं। प्रसाद के पत्रों में युगीन साहित्यिक विमर्श तो नहीं मिलते हैं लेकिन प्रकाशित रचनाओं की चर्चा अवश्य है। कभी उन्होंने पत्रों में अपनी रचना का संकेत दिया तो कभी अन्य साहित्यकारों को उनकी रचना पर बधाई।

'आँसू' के दो संस्करण दिए गए हैं। ग्रंथावली के दूसरे खंड में 'आँसू' का दूसरा संस्करण दिया गया है। वर्तमान में यही संस्करण प्रचलित है। ग्रंथावली के अंतिम खंड में 'आँसू' का पहला संस्करण दे दिया गया है। पहले संस्करण का अपना महत्त्व है। पहले और बाद के संस्करणों में तुलना करके साहित्यकार के विचारों में आए परिवर्तनों को समझा जा सकता है। प्रसाद की 'कामायनी' एक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध कृति है। संपादक ने बतलाया है कि पाठ्यक्रम में लगने और रॉयल्टी फ्री होने पर रचना की दुर्गति होती है। वही 'कामायनी' के साथ हुआ है। संपादक ने 'कामायनी' की पांडुलिपि और उसके प्रथम संस्करण को ढूँढ़ा और उसका मिलान किया। उन्होंने इस ओर संकेत किया कि प्रसाद ने किस प्रकार 'कामायनी' के प्रकाशन के पूर्व उसका कई कई बार संशोधन किया था।

ग्रंथावली में जहाँ तक संभव हुआ रचना के प्रथम प्रकाशन की सूचना दे दी गई है। संपादक ने प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की सूची देकर सुधि पाठकों को लाभांवित होने का मार्ग दिखलाया है। प्रसाद के लेखन पर कई तरह के आरोप लगते रहे हैं। प्रेमचंद के अनुसार 'प्रसाद गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं'। प्रसाद ने अपने कई निबंधों में खुद पर लगाए गए आरोपों का उत्तर दिया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा छायावादियों पर रहस्यवादी होने का आरोप प्रसिद्ध है। प्रसाद ने इस आरोप के उत्तर के क्रम में 'रहस्यवाद' लेख लिखकर रहस्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि बतायी और 'छायावाद और रहस्यवाद' लेख में अपनी काव्य मान्यताओं को स्पष्ट किया।

'जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली' में संपादक ने पूरा प्रयास किया है कि प्रसाद की प्रकाशित अप्रकाशित रचनाओं का प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत किया जाय। साथ ही साथ युगीन विवादों पर यथासंभव प्रकाश डाला जाय।

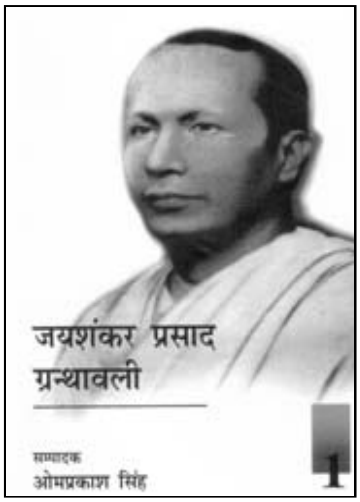

जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली : ओमप्रकाश सिंह द्वारा संपादित (सात खण्डों में) जयशंकर प्रसाद के संपूर्ण रचना संसार को विधिवत प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ। प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, मूल्य 7000/–

Mk- xkfcUn izlkn dh iLrd ^dsnkjukFk flag dh dfork % fcEc l vk[;ku rd* rFkk ^dfork dk ik'o* ij lxk"Bh fjikVZ

^dfo dh dye dk le>u dk lkgl* : एस.के. सोपोरी

15 नवम्बर, 2013 को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कला और सौंदर्यशास्त्र संस्थान के सभागार (School of Arts & Aesthetics Auditorium) में भारतीय भाषा संस्थान के प्राध्यापक प्रो. गोबिन्द प्रसाद की पुस्तकों का लोकार्पण एवं विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी के सत्र की शुरुआत करते हुए डॉ. रामचन्द्र ने सभी विद्वतजनों और छात्रों की उपस्थिति पर आभार प्रकट करते हुए परिचर्चा में संवाद के मुख्य बिन्दुओं से अवगत कराया। तत्पश्चात् उद्घाटन सत्र में विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. एस.के. सोपोरी ने प्रो. गोबिन्द प्रसाद की पुस्तक "केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक" और "कविता का पार्श्व" का लोकार्पण किया। पुस्तक के विषय में अपने विचार रखते हुए उन्होंने कहा कि "ये पुस्तक उस कलम को साहस से समझने का प्रयत्न है, जो कविता लिखती है, लेखक ने एक नये भाषिक कलेवर की तलाश की है, जिसमें गहरा दार्शनिक बोध है।" उन्होंने स्टिल फोटोग्राफी पर लेखक की गहरी समझ की सराहना करते हुए पुस्तक का ही एक उद्धरण दिया है, "सड़क के इस तरफ खड़ा है, पाँव उठा है और दूसरा इन्तज़ार कर रहा है" (केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक)।

प्रो. हरिमोहन शर्मा ने विचार गोष्ठी के अपने सम्बोधन में कवि कर्म को "भूकम्प की चुप्पी" कहा, जिसमें केदारनाथ सिंह की कविता को सिलसिलेवार रूप में समझने की कोशिश की है, जिसमें तीस–बत्तीस वर्षों के लम्बे समय को समेटा गया है। उन्होंने कहा गोबिन्द जी के लेखकीय कर्म में कवि केदार जी के देशीपन को समझा और जाना गया है जोकि एक जागरूक कवि की समय से मुठभेड़ को जानने की ही एक कोशिश रही है।

अंत में अपनी बात को विराम देते हुए उन्होंने कहा लेखक ने संगीत की शब्दावली में विश्लेषण को मूर्त किया है, जो कि महत्वपूर्ण है।

गोष्ठी के सत्र को आगे बढ़ाते हुए नारीवादी लेखिका डॉ. सविता सिंह ने अपनी गम्भीर टिप्पणी दी, उन्होंने कहा, 'कविता का पार्श्व' और 'केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक' शीर्षक पुस्तकों में 'स्त्री की स्थिति' पर प्रकाश नहीं डाला गया है; जबकि जेंडर एक बड़ा मुद्दा रहा है और इससे हमें बचना नहीं चाहिए। पर वहीं दूसरी तरफ वे मानती हैं कि इन पुस्तकों के लेख सकारात्मक ऊर्जा और आधुनिक सोच से भरे हुए हैं। 'कविता का पार्श्व' शीर्षक पुस्तक के लम्बे लेख 'बाघ' को उन्होंने गम्भीरतम लेख की संज्ञा दी और उसे लेखक की उपलब्धि बताया, इस बहाने केदारनाथ सिंह की लम्बी कविता 'बाघ' पर उन्होंने अपने विचार भी व्यक्त किए।

सविता सिंह की गम्भीर टिप्पणियों के बाद भारतीय भाषा केन्द्र के ही पूर्व प्राध्यापक प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने बड़ी कविता की परिभाषा देते हुए केदारनाथ सिंह की 'बाघ' कविता के कुछ अंशों का उच्चारण किया "कि बड़ी कविता वही होती है, जो जीवन में संकट के समय याद आती है, काम आती है।" 'बाघ' कविता के अंश –

"मौसम जैसा है और
हवा जैसी बह रही है
उसमें कभी भी और कहीं भी
आ सकता है बाघ।"

केदारनाथ सिंह के कवि कर्म को केन्द्रित रखते हुए ही उन्होंने आगे कहा कि 'बाघ' शीर्षक कविता में स्थानीयता तो है ही पर सार्वभौमिकता भी है जो तुलसी की अवधी और भिखारी ठाकुर की भोजपुरी इसी शृंखला में अगला कदम है।

कवि और आलोचक अशोक वाजपेयी ने अपने सम्बोधन में कहा – ये एक कवि की कवि को समझने की कोशिश है, जिसमें समर्पण भाव अधिक है, अतः इसे (केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक) आलोचना की आस्वादपरक पुस्तक कह सकते हैं, आगे उन्होंने लेखक के पुस्तकीय वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा "ये लेखक का विनम्रता से उपजा शिशु सहज भाव नहीं वरन् परिपक्व विचार है जिसमें ही सारा भेद छुपा है।"

गोष्ठी के अन्त में विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द्र गौड़ ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

गोष्ठी में लेखक प्रो. गोबिन्द प्रसाद के आलोचकीय व्यक्तित्व पर उनके लेखों के मद्देनज़र विस्तार से बातें हुईं और कवि केदारनाथ सिंह की कविता पर भी पुनः विचार किया गया, जो बहुत गम्भीर और महत्वपूर्ण रहा।

प्रस्तुति – भावना बेदी

xfrfof/k;k¡

tkiku ds lezkV vkSj lezkKh dk tsu;w vkxeu ij ,d fjiksVZ

भारत की यात्रा पर आए जापान के सम्राट आकिहितो और सम्राज्ञी मिचिको ने सोमवार, दिनांक 2 दिसंबर 2013 को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का दौरा किया। सम्राट आकिहितो भारत की यात्रा पर पधारने वाले जापान के पहले सम्राट हैं। यह भारत और जापान के बढ़ते हुए मैत्रीपूर्ण संबंधों को रेखांकित करता है। इससे पहले अपनी पत्नी क्राउन प्रिंसेस मिचिको के साथ उन्होंने क्राउन प्रिंस के रूप में सन् 1960 में भारत की यात्रा तब की थी जब उनकी शादी हुई थी। सम्राट और सम्राज्ञी का भारत में आगमन 30 नवम्बर 2013 को हुआ था और उनकी अगवानी के लिए स्वयं प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह अपनी पत्नी श्रीमती गुरशरण कौर के साथ पालम एयरपोर्ट पर उपस्थित थे। इस भारत यात्रा के तीसरे दिन शाही दंपति का स्वागत जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कुलपति माननीय प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी ने बड़े ही उत्साह के साथ किया। कुछ समय कुलपति के साथ बातचीत के पश्चात् सम्राट और सम्राज्ञी ने विश्वविद्यालय में स्थित भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान के जापानी अध्ययन केन्द्र का दौरा किया। इस कार्यक्रम में साक्षात् अपनी आँखों के सामने बैठे हुए इस शाही दंपति के दर्शन करने वाले भाग्यशाली रहे हमारे भाषा संस्थान में जापानी भाषा की पढ़ाई कर रहे छात्र एवं छात्राएं। इस शाही दंपति ने जापानी पढ़ रहे छात्रों से मुलाकात की एवं उनके साथ ग्रुप डिस्कशन में भी शामिल हुए। ग्रुप डिस्कशन की चर्चा का विषय था "जापानी समाज में बढ़ती हुई वृद्धों की संख्या"। ग्रुप डिस्कशन में जापानी अध्ययन केन्द्र के छात्र–छात्राओं ने काफी उत्साह के साथ भाग लिया और इस डिस्कशन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि स्वयं शाही दंपति भी जापानी भाषा में तर्क–वितर्क कर रहे छात्रों को देखकर भावविभोर हो उठे। इस बात से प्रसन्न होकर सम्राट एवं सम्राज्ञी ने उन छात्रों को भविष्य में मन लगाकर पढ़ने के लिए प्रोत्साहित भी किया। छात्रों के लिए यह एक कभी ना भूला जा सकने वाला सुनहरा अवसर था। भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान से निकलने के बाद सम्राट आकिहितो और सम्राज्ञी मिचिको जेएनयू की लाइब्रेरी में गए। यहां पर उन्होंने कुछ समय बिताया और लाइब्रेरी के मैगज़ीन सेक्शन में खास तौर पर उन्हीं के लिए प्रदर्शित किताबों का मुआयना भी किया। विश्वविद्यालय प्रशासन का कहना है कि जापान के शाही दंपती की यह यात्रा जापान और भारत के रिश्तों में और मिठास घोलेगा। यह यात्रा घनिष्ठ एवं मैत्रीपूर्ण संबंधों का प्रमाण है जो जापान एवं भारत के बीच सदियों–सदियों से चले आ रहे हैं।

भारत और जापान दोनों ही देशों के लिए इस यात्रा का महत्व इसलिए ज्यादा है कि सम्राट को जापानी संस्कृति का केन्द्र समझा जाता है और जापान में सम्राट को जापानी पुराण के अनुसार "आमातेरासु" (सूर्य की देवी) का वंशज माना जाता है। जापानी पुराणों के अनुसार "सूर्य की देवी" आमातेरासु को जापान में सबसे महत्वपूर्ण देवता और शाही परिवार के पूर्वज के रूप में देखा जाता है। हम सब भविष्य में यह पूरी उम्मीद कर सकते हैं कि सम्राट एवं सम्राज्ञी की सन् 2013 की इस भारत यात्रा से भारत और जापान के आपसी संबंध और भी ज्यादा सुदृढ़ होंगे और एक दूसरे के प्रति मित्रता पहले से भी ज्यादा मजबूत होगी।

प्रस्तुति – कौशिका

nljk xq.kkdj eqys Le`fr O;k[;ku

विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर जेएनयू में 10 जनवरी 2014 को दूसरे गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति और प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी ने की और मंच का संचालन प्रो. गोबिन्द प्रसाद ने किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के रसायन विज्ञान विभाग के प्रो. पवन माथुर ने 'भाषा, सर्जना और विज्ञान' पर दूसरा गुणाकर मुले स्मृति व्याखान दिया। उन्होंने कहा कि भाषा से हमारा गहरा और अटूट सम्बन्ध है। यह वह प्राण तत्व है, जिसके बारे में बोलना, सोचना वैसा ही है जैसा आप हम स्वयं को भाषा विहीन माने तो बहुत पीछे की ओर पहुँच जाएंगे। शब्द के लिए स्वर, स्वर के लिए वाणी और वाणी के लिए वाक् तंत्र चाहिए। वाणी तंत्र के बिना भाषा सम्भव ही नहीं है। डॉ. गोबिन्द प्रसाद ने अपने शुरुआती वक्तव्य में कहा कि गुणाकर मुले का सम्बन्ध विज्ञान और गणित से है। उन्होंने इन विषयों पर हिंदी में अनेक पुस्तकें लिखीं। भाषा जितना उद्घाटित करती है कहीं उससे ज़्यादा छिपाती है। उन्होंने अज्ञेय की कविता को याद करते हुए कहा ''शब्द सारे व्यर्थ हैं। क्योंकि शब्दातीत कुछ अर्थ हैं।'' प्रो. सोपोरी ने अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए कहा कि यह बहुत ही गूढ़ विषय है, जिस पर निरन्तर शोध की आवश्यकता है। हमारे भाषा विज्ञान केन्द्र में इस पर कार्य हो रहा है। हम केवल अंग्रेज़ी और हिंदी की बात करते हैं लेकिन अन्य भाषाएं भी हैं। हमारा मस्तिष्क किस प्रक्रिया के माध्यम से समस्त भाषाओं को सीखता और कार्य करता है। इस पर शोध होना चाहिए। उन्होंने प्रथम 'गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान' के अंतर्गत इतिहासवेत्ता एवं संस्कृतिविद् प्रो. उदय प्रकाश अरोड़ा द्वारा दिए गए 'विज्ञान एवं वैज्ञानिक चिन्तनः पूर्व और पश्चिम' विषयक व्याख्यान का पुस्तिका रूप में विमोचन किया, जिसकी प्रतियाँ श्रोताओं में वितरित की गयीं। प्रो. सौमित्र मुखर्जी ने कहा कि व्यवहार में हिंदी को प्रोत्साहन दिए जाने की ज़रूरत है। केवल कहने से हिंदी में कार्य नहीं होगा। इतिहासवेत्ता एवं संस्कृतिविद् प्रो. उदय प्रकाश अरोड़ा ने कहा कि भाषा का निर्माण एक लम्बी प्रक्रिया के बाद होता है। उसके विकास में संस्कृतियों का विशेष योगदान होता है। कुलसचिव डॉ. संदीप चटर्जी ने सभागार में उपस्थित समस्त अध्यापकों और श्रोताओं को धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहा कि इस संगोष्ठी का सेमिनार में बदल जाना संगोष्ठी में लोगों के रुझान को प्रदर्शित करने के लिए काफी है।

प्रस्तुति –सुनीता

i:epn d: v/;;u dh u;h fn'kk,¡
,d fjikVZ

हिन्दी कथा साहित्य के इतने लम्बे सफर के बाद जब भी बात शुरू होती है तो वह प्रेमचंद से या किसी अन्य बिन्दु से शुरू होने के बाद प्रेमचंद तक पहुँच जाती है। कारण अब भी प्रेमचंद निर्विवाद रूप से ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने हिंदी कथा–साहित्य को न केवल यथार्थ धरातल, आम जनजीवन, व अन्य सामाजिक सरोकारों से जोड़ा बल्कि उसे इस रूप में एक नयी ऊँचाई भी दी। आज का लगभग हर लेखक किसी न किसी रूप में स्वयं को प्रेमचंद की परम्परा से जोड़ना चाहता है। हिंदी साहित्य का वर्तमान दौर विमर्शों का दौर है, पाठ की पुर्नव्याख्याओं का दौर है। ऐसी स्थिति में प्रेमचंद के लेखन का भी पुनर्पाठ होना लाजमी है। प्रेमचंद के कथा लेखन के केंद्र में आम आदमी और आम जनजीवन है। वह आम व्यक्ति किसान, मजदूर, निम्न मध्यवर्गीय स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकता है। किसानों में भी कोई बहुत बड़ा काश्तकार नहीं है बल्कि 'दो बीघा जमीन' को बचाने के लिए मजदूर बनने को अभिशप्त किसान है। प्रेमचंद की रचनाओं में बड़े काश्तकार और जमींदार भी आये हैं, लेकिन वह सामाजिक संरचना को दिखाने के लिए। मजदूर व सामाजिक रूप से उपेक्षित निम्न जातियों के बंधुआ मजदूर उनकी कथा संरचना के केंद्र में हैं। स्त्री पात्र भी लगभग वहीं से आते हैं जहाँ से पुरूष पात्रों को लिया गया है। आज का विमर्शात्मक साहित्य अस्मितामूलक सवालों को लेकर खड़ा है। ऐसी स्थिति में प्रेमचंद के कथा साहित्य में ऐसे पात्रों व ऐसे जीवन का - जो विभिन्न सामाजिक सरोकारों से जुड़े हुए हैं - मूल्यांकन उनकी अस्मिताओं के संदर्भ में व तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में करना आवश्यक हो जाता है।

इसी संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र की ओर से 9 अक्टूबर, 2013 को आयोजित 'प्रेमचंद स्मृति व्याख्यान' का विषय 'प्रेमचंद के अध्ययन की नई दिशाएँ' रखा गया। प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलितों की स्थिति और अस्मिता पर जयप्रकाश कर्दम ने अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि प्रेमचंद निश्चित रूप से स्वाधीनता आंदोलन के दौर के लेखक हैं। उन पर गाँधी का व्यापक प्रभाव है। प्रेमचंद की शुरूआती रचनाएँ आदर्शवादी हैं, लेकिन उनके यथार्थवादी लेखन पर भी गाँधी का प्रभाव है। साहित्य में गाँव के मजदूर, किसान, साहूकार आदि की बात करते हुए हम सब कुछ समझ नहीं पाते हैं। गाँव में दलितों की स्थिति वैसी नहीं है जैसी साहित्य में हम पाते हैं। गाँव उनके लिए शोषण के कारखाने हैं, लेकिन इस रूप में यह रेखांकित नहीं हुआ है। 'सद्गति' में करुणा और अमानवीयता है लेकिन इसके प्रतिकूल लेखक की कोई कठोर टिप्पणी नहीं है। डॉ. अम्बेडकर और हिंदी पट्टी में आर्यसमाज से निकले अछूतानंद आदि के आंदोलन से प्रेमचंद अपरिचित नहीं हैं। 'रंगभूमि' में दलित की भूमि दान करा ली जाती है और उसका महिमामंडन होता है। जो बेचने को तैयार नहीं है वह दान कैसे करेगा ? यह प्रकारांतर से मनुस्मृति की व्याख्या की याद दिलाता है। साहित्य के लोकतंत्र में शोषण कभी महिमामंडित नहीं होता। प्रेमचंद महत्वपूर्ण हैं इसीलिए उनकी आलोचना भी की जाती है। पूना पैक्ट का प्रेमचंद ने समर्थन किया, जो दलितों के साथ धोखा है। कम से कम इन बिंदुओं और आंदोलनों तथा संघर्षों को प्रेमचंद रेखांकित कर सकते थे। प्रेमचंद समकालीन लेखकों से अपने सामाजिक सरोकारों को लेकर बहुत आगे हैं। उन्हें डिकोड करना जरूरी है, न कि खारिज करना।

नामवर जी की किताब 'प्रेमचंद और भारतीय साहित्य' में 19 लेख हैं। उनमें से अंतिम दो भाषण हैं। 'दलित साहित्य और प्रेमचंद' पर बोलते हुए नामवर जी ने कहा कि प्रेमचंद की स्थिति भोजपुरी की उस कहावत जैसी है 'जेही खातिर चोरी करे, उहे कहे चोरवा'। दलितों की सामाजिक स्थिति को अपने लेखन का विषय बनाकर प्रेमचंद ने सवर्णों में बदनामी हासिल की। प्रसिद्ध दलित आलोचक धर्मवीर उन्हें 'सामंत का मुंशी' कहते हैं। धर्मवीर को यह बताना चाहिए कि प्रेमचंद किस राजा और सामंत के मुंशी थे ? उन्होंने 'कफन' की अद्भुत व्याख्या की है। इसे सुपाठ कहेंगे या कुपाठ ? वास्तव में इसे 'मारिस मोहिं कुठाँव' कहा जायेगा। प्रेमचंद का कुपाठ करने वाले लोग बाबा साहेब का भी कुपाठ कर सकते हैं। साहित्य के मंदिर में सही पाठ होना चाहिए। साहित्य के मंदिर में पूर्वग्रहों को छोड़कर जाएँ। प्रेमचंद का दलित साहित्य इतिहास का तथ्य है। गाँधी कांग्रेस में रहते हुए दलितों के साथ थे और उन्हीं के कहने से अंबेडकर संविधान सभा के अध्यक्ष बने। यह ऐतिहासिक तथ्य है। गाँधी अंबेडकर के महत्व को समझते थे, नेहरू समझें या नहीं। जब स्वतंत्रता संग्राम शीर्ष पर था, 'रंगभूमि' उस समय का उपन्यास है। सूरदास अंधा है, लमही के पास का रहने वाला है। सूरदास की समस्या दलितोद्धार की नहीं है। मंदिर के कीर्तन में शामिल है सूरदास। सूरदास जैसा नायक पूरे हिंदी साहित्य में नहीं है। वह अडिग खड़ा है लाठी लिए हुए। हिंदी उपन्यास में गाँधी को देखना है तो सूरदास को देखिए। राष्ट्रीय आंदोलन में दलितों की भागीदारी बढ़ती है 1930 के आस–पास। 'कर्मभूमि' उसी समय का

उपन्यास है। 'कर्मभूमि' का सवाल है हरिजनों का मंदिर प्रवेश। हरिजनों का मंदिर प्रवेश होता है। मंदिर का द्वार दलितों के लिए खुला तो उसके पीछे भी स्वार्थ है। मंदिर का पुजारी प्रसन्न होता है कि अब तो चढ़ावा और अधिक आयेगा। दलितों को रिजर्वेशन देना कांग्रेस के लिए चढ़ावा बढ़ने के समान है। आज वही हो रहा है जो प्रेमचंद ने 1931 में लिखा था। 'कायाकल्प' तक आते–आते प्रेमचंद समझ गये थे कि दलितों को अहसान की जरूरत नहीं है। जरूरत है उनकी सामाजिक स्थिति बदलने की। प्रेमचंद समझ रहे थे कि जात–पाँत की व्यवस्था तोड़ी जाय, न कि उन्हें रियायत दी जाए। यहाँ प्रेमचंद गाँधी से अलग हो जाते हैं। 'गोदान' में मातादीन कहता है – 'मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ।'

अंतिम दौर की कहानियाँ 'सद्गति', 'कफन', दूध का दाम', 'ठाकुर का कुआँ आदि इसी धरातल की कहानियाँ हैं। 'सद्गति' के दुक्खी का लकड़ी की गाँठ तोड़ना प्रतीकात्मक है। वह गाँठ हमारी सामाजिक व्यवस्था की गाँठ है, जिस पर दुक्खी बार–बार चोट कर रहा है। 'ठाकुर का कुँआ' और 'सद्गति' का पाठ मिलाकर होना चाहिए। ठाकुर के दरवाजा खोलते ही 'गंगी' वहाँ से बेतहाशा दौड़ती हुई वापस आती है। ठाकुर का दरवाजा खोलना शेर के मुख का खुलना है। 'दूध का दाम' कहानी में भंगिन नार काटने आती है। मंगल (उसका बेटा) आवारा कुत्ते के साथ बतिया रहा है "लात मारी रोटियाँ भी न मिलतीं तो क्या करता ! सुरेश को अम्मा ने पाला।" ये है सामाजिक विडंबना और यथार्थ, जहाँ माँ के दूध के बदले में लात मारी रोटियाँ मिलती हैं। और इसमें जीने के लिए अभिशप्त है समाज का एक बड़ा हिस्सा। प्रेमचंद के लेखन के इस यथार्थ को स्पष्ट करते हुए नामवर जी ने कहा कि अंतिम दौर में प्रेमचंद के यहाँ यथार्थवादी कला अपने चरम पर पहुँच गयी थी। प्रेमचंद पर आरोप लगाने वाले लोगों को यह समझना चाहिए कि ज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान से लड़ाई होती है। सिर्फ सहानुभूति या गुर्राने से साहित्य में कुछ नहीं होता है। ऐसी स्थिति में कोई लम्बे समय तक साहित्य में बना नहीं रह सकता है। 'निराला' को उद्धृत करते हुए नामवर जी ने कहा कि "आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।" सवाल सिर्फ विमर्श का नहीं है बल्कि क्रिएटिविटी का भी है, क्योंकि कपोल से ही कपोल मसला जाता है। साहित्य की लड़ाई साहित्य से होती है।

दलित विमर्श के साथ ही प्रेमचंद का पाठ स्त्री विमर्श के संदर्भ में भी होना चाहिए। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए रोहिणी अग्रवाल ने प्रेमचंद के लेखन को उनके आस–पास के साहित्यिक व सामाजिक धरातल के परिप्रेक्ष्य में देखने व उसका मूल्यांकन करने की बात कही। उन्होंने कहा कि 'गबन' की जालपा और शिवरानी देवी को एक साथ रखकर देखने पर बहुत–सी बातें खुलती हैं। जालपा को यू टर्न देकर प्रेम व त्याग की प्रतिमूर्ति बनाया गया है। निर्मला सिर्फ करूणा और आँसू बहाने वाली के रूप में चित्रित है। 'करुणा' का संबंध निष्क्रियता से है। बराबरी में द्वन्द्व होता है। शिवरानी देवी ने 1916 में 'साहस' कहानी लिखी। इसे प्रतिशोध की कहानी कहा जा सकता है, लेकिन यहाँ ऐंगल का फर्क है। यह दृष्टिगत अंतर लेखक का व्यक्तित्व बनकर रचना में आता है। 'गबन' के साथ 'सीमंतनी उपदेश' को भी सामने रखना चाहिए। 'गोदान' की 'धनिया' पितृसत्ता की चौकीदार के रूप में सामने आयी है। 'मालती' को लेकर विचलन बहुत है। इस संदर्भ में प्रेमचंद के 1931–33 के संपादकीय को भी देखना चाहिए। 'झुनिया' के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण बात कही गयी है कि "सर्वस्व तभी पाओगे जब सर्वस्व दोगे।"

'करुणा' निष्क्रियता नहीं बल्कि शाश्वत मूल्य है। इसे इतना कमजोर नहीं समझना चाहिए। मृदुला गर्ग ने रोहिणी अग्रवाल की बातों के संदर्भ में यह बात कही। प्रेमचंद के लेखन का आधारभूत तथ्य 'समता' है। प्रेमचंद के लेखन का सबसे बड़ा खलनायक महाजन है और वर्तमान समाज में भी यह महाजन हर स्तर पर मौजूद है। गाँव अब सिर्फ गाँव में नहीं रह गया है बल्कि वह शहरों की अवैध बस्तियों और स्लम में पहुंच गया है। इन्हें अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए। ये समर्थों के उपनिवेश बन गये हैं। प्रेमचंद की सफलता इसमें है कि उनके लेखन के कई पाठ हो सकते हैं। 'कफन' की घटना सिर्फ दलित विमर्श की नहीं है। उसका संबंध हर वर्ग और जाति के स्त्री–पुरूष संबंधों से है। घीसू और माधव की उदासीनता मात्र अभावजनित नहीं है। आज 70 वर्ष बाद स्त्री विमर्श वहीं जा पहुँचा है जहाँ प्रेमचंद थे। होरी और धनिया का संघर्ष उनके वर्ग का संघर्ष है। स्त्री लेखन ने मातृत्व के रूपक को विस्तार दिया है। इसने मातृत्व को पोषक तत्व के रूप में विकसित किया है। पोषण का यह तत्व पुरुषों में भी होता है। 'गोदान' में यह पोषण तत्व धानिया में है, सिलिया और झुनिया को संरक्षण देने के संदर्भ में। प्रेमचंद के लेखन में स्त्रियाँ यौनिक की अपेक्षा सामाजिक प्राणी के रूप में आयी हैं।

'प्रेमचंद के अध्ययन की नई दिशाएँ' के रूप में यह कार्यक्रम एक सार्थक पहल और बहस के रूप में सामने आया है। समय के साथ–साथ प्रेमचंद जैसे रचनाकारों के संदर्भ में ऐसी बहसें और समीक्षात्मक मूल्यांकन उन्हें समझने की नई दिशाएँ खोलने के समान है। ऐसे कार्यक्रम इस रूप में आगे बढ़ते रहें। यही साहित्य की उपादेयता व साहित्य और समाज के सहसंबंध और अन्योन्याश्रिता को भी बनाये रखेंगे।

प्रस्तुति – दीपशिखा सिंह

नए प्रकाशन

सृष्टि पर पहरा : केदारनाथ सिंह। हिंदी के वरिष्ठतम कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं का नवीनतम काव्य संकलन जिसमें आख्यान और गद्य के विभिन्न रूपों को काव्य में रूपांतरित करने की अद्भुत कला दिखाई पड़ती है।
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–81–267–2590–8

केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक : गोबिन्द प्रसाद। केदारनाथ सिंह के कवि कर्म तथा काव्य भाषा को रेखांकित करने वाली पहली आलोचनात्मक कृति।
स्वराज प्रकाशनः नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–93–81582–59–6

जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली : ओमप्रकाश सिंह द्वारा संपादित (सात खण्डों में) जयशंकर प्रसाद के संपूर्ण रचना संसार को विधिवत प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ।
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,
मूल्य 7000/–
ISBN N0. 978–81–7714–455–0

शमशेर का संसार : रमण सिन्हा। शमशेर के कवि कर्म, गद्य लेखन, अनुवाद के साथ उनके चित्रों को समझने की दिशा में एक सार्थक पहल।
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
मूल्य 375/–
ISBN N0. 978–93–5072–563–4

बस्ती कभी नहीं बसती : बृजेश कुमार की कविताओं का पहला काव्य संकलन।
ईशा ज्ञानदीप, शालीमार बाग, नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–93–82543–03–9

कविता का पार्श्व : गोबिन्द प्रसाद। आलोचना और समीक्षा कर्म के धागों से बुनी यह कृति कई पीढ़ियों के रचना कर्म पर दृष्टिपात करती है।
शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली,
मूल्य 225/–
ISBN N0. 978–93–81611–62–3

दलित साहित्य : आशय, आंदोलन और अवधारणा : डा. राम चन्द्र दलित आंदोलन के विभिन्न पक्षों पर गहरी अंतर्दृष्टि और विश्लेषणात्मक लेखों का महत्वपूर्ण संकलन।
आखर प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य 295/–
ISBN N0. 81–922108–7–1

आदिवासी साहित्य विमर्श : डॉ. गंगा सहाय मीणा द्वारा संपादित यह पुस्तक आदिवासी साहित्य और विमर्श को समझने की दिशा में सार्थक पहल है।
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, मूल्य–120 रुपये,
ISBN N0. 978-81-7975-580-8

"विश्वविद्यालय की विशेषताएँ होती हैं, मानववाद, सहिष्णुता, तर्कशीलता, विचार का साहस और सत्य की खोज। विश्वविद्यालय का काम है उच्चतर आदर्शों की ओर मनुष्य जाति की सतत यात्रा को संभव करना। राष्ट्र और जनता का हित तभी हो सकता है जब विश्वविद्यालय ठीक से अपने दायित्वों का निर्वाह करें।"

— जवाहरलाल नेहरू

परिसर वीथिका

1. डॉ. गोबिन्द प्रसाद की पुस्तक 'केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक' का कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी, अशोक वाजपेयी द्वारा लोकार्पण। साथ में केदारनाथ सिंह, मैनेजर पाण्डेय, असलम इस्लाही, रामबक्ष जाट, हरिमोहन शर्मा, सविता सिंह, गोबिन्द प्रसाद और राम चन्द्र।
2. गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान–2 के अवसर पर डॉ. उदय प्रकाश अरोड़ा द्वारा दिए गए स्मृति व्याख्यान–1 'विज्ञान एवं वैज्ञानिक चिन्तन : पूर्व और पश्चिम' का पुस्तिका रूप में लोकार्पण। साथ में गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान–2 के मुख्य वक्ता प्रो. पवन कुमार माथुर, प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी, प्रो. उदय प्रकाश अरोड़ा, डॉ. संदीप चटर्जी और प्रो. गोबिन्द प्रसाद।
3. जापान सम्राट और साम्राज्ञी के जेएनयू आगमन पर कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी और कुलदेशिक प्रो. सुधा पई द्वारा स्वागत।
4. हिंदी कार्यशाला के अवसर पर प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए कुलसचिव डॉ. संदीप चटर्जी।
5. प्रेमचंद स्मृति व्याख्यान के अवसर पर उपस्थित प्रो. नामवर सिंह, प्रो. रामबक्ष जाट, प्रो. रोहिणी अग्रवाल, सुश्री मृदुला गर्ग, जयप्रकाश कर्दम और डॉ. ओमप्रकाश सिंह।
6. गणतंत्र दिवस के अवसर पर केन्द्रीय विद्यालय के छात्र–छात्राओं और शिक्षकों के साथ कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी तथा अन्य।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के लिए कुलसचिव डॉ. संदीप चटर्जी द्वारा प्रकाशित।
मुद्रक : अलकनन्दा एडवरटाइजिंग प्रा. लि., ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज–II, नई दिल्ली–110020